- चतुर्थ अध्याय -

- भैरवप्रसाद गुप्त के आलोच्य उपन्यासों का संक्षिप्त आशय -

अध्याय - चतुर्थ

भैरवप्रसाद गुप्तजी के आलोच्य उपन्यासों का संक्षिप्त आशय

भैरवप्रसाद गुप्तजी जनवादी विचारधारा के उपन्यास लेखक माने जाते हैं। उनके उपन्यासों में सौंदर्य और कला की कमियाँ महसूस होती हैं। इसका कारण यह है कि वे पहले उन भौतिक अभावों को, जनता के दैन्य और दरिद्रता को पूरा करना चाहते हैं, इसलिए उनके उपन्यासों में सौदर्यानुभूति और कला की कमियाँ लक्षित होती हैं। उनका सिध्दांत है कि "भूखे भजन न होय गोपाल" इसलिए उन्होंने कला को जनसाधारण के उपभोग का विषय बनाया है और शोषित पीडित मानव को ही अपने उपन्यासों का अवलंब बनाया है। सामंतशाही, पूंजीवाद से उनका विरोध है। उनके प्रगतिवादी उपन्यासों में जनवादी विचारधारा प्रवाहित हो रही है क्योंकि प्रगतिवाद का जन्म ही जनसमूह की राजनीतिक चेतना के फलस्वरूप होता है। भैरवप्रसाद गुप्तजी के उपन्यासों के संक्षिप्त आशय से यह बात पूर्ण रूप से स्पष्ट हो जाती है। उनकी प्रगतिवादी विचारधारा ने उनके उपन्यासों को पुष्ट बनाया है। यहाँ हम भैरवप्रसाद गुप्तजी के उपन्यासों का संक्षिप्त में समीक्षात्मक आशय दे रहे हैं।

मशाल - 1951 :-

श्री भैरवप्रसाद गुप्तजी सर्वहा के लेखक रहे हैं। गुप्तजी के "मशाल" 1951 में श्रमिक वर्ग के संघर्ष का सैध्दांतिक स्तर चित्रण किया गया है। उपन्यास के सभी पात्र प्रगतिवादी विचारों के वाहक हैं। सभी का सम्बन्ध श्रमिक-वर्ग के जीवन से रहा है। नरेंदा, मंजूर, शकूर, सकीना, मदीना आदि सभी पात्र ठोस प्रगतिवादी हैं। उपन्यास की भूमिका में ही लेखक ने कहा है - "मजदूरों के इस संयुक्त मोर्चे की आवाज कानपुर के मजदूर आन्दोलन के इतिहास में सदा अमर रहेगी। आठ मजदूर शहीदों और सत्तर घायल मजदूरों के लाल खून से कानपुर के मजदूरों ने जो जंगी एकता और क्रान्तिकारी संयुक्त मोर्चे की मशाल जलाई है, वह कभी न बुझेगी। उसकी लाल रोषनी धीरे-धीरे सारे हिन्दुस्तान में फैल जायगी और जनता के सभी शोषित वर्गों को भी इन्कलाबी एकता की लडी में पिरो कर उसे मजदूरों के इन्कलाब का रास्ता दिखायगी.....।"[1]

उपन्यासकार ने श्रमिकों के जीवन का चित्रांकन बडे सजीव रूप से किया है। गरीबी, साहसिकता, पारस्परिक संगठन और सहानुभूति की भावना से युक्त साम्यवादी रंग में रंगे हुऐ श्रमिक जीवन के अनेक चित्र उपस्थित किये हैं। उपन्यास का नायक 'नरेन' गाँव का रहनेवाला व्यक्ति है। बचपन से ही उसके मन में रूढिग्रस्त आचार-विचार के विरूध्द विद्रोह पनपता है। आर्थिक दुर्बलता के कारण नरेन को माँ की ममता तथा स्नेहशीला भाभी सकीना के सात्विक स्नेह के बन्धन को तोडकर भागना पडता है। स्वाधीनता की लडाई लडनेवाला एक सेनानी नरेन जब गाँव लौटता है तब उसे न भाभी मिलती न माँ। दुःखी नरेन अपने मित्र के साथ कानपुर भी जाता है। नरेन को अवसरवादी नेताओं से बडी घृणा है कि जो जनता द्वारा प्राप्त चन्दे को अपने स्वार्थ के लिए उपयोग में लाते हैं श्रमिक जीवन और उसके साम्यवादी विचारों और विश्वासों के प्रत्यक्ष सम्पर्क में आने के कारण नरेन अपने जीवन के सुनेपन को विस्तृत कर अपने आपको शोषित और पीडित-वर्ग को सर्मपित कर देता है। यही उसके जीवन में नवीन प्रगतिवादी चेतना का संचार होने लगता है तथा, श्रम की गरिमा और श्रमिक वर्ग की सच्ची मानवीयता तथा विश्वविजयी शक्ति की अनुभूति उसकी आत्मा का उन्नयन करती है।

द्वितीय विश्वयुध्दोत्तर, आर्थिक संकट, फासिस्ट-नाजियों द्वारा राष्ट्रीय शक्तियों का दमन, ब्रिटिश साम्राज्यवादियों द्वारा भारतीय जनता का आर्थिक और राजनीतिक शोषण तथा साम्राज्यवादी शक्तियों की पराजय और पूंजीवादी का उदय, रूस की विजय, तथा समाजवाद की स्थापना, भारत में कम्युनिस्ट पार्टी तथा प्रगतिशील राजनीतिक दलों का उदय और उनकी सक्रिय कार्यनीति तथा राजनीतिक गतिविधियों, सन 1943 के भारत छोडो आन्दोलन, कांग्रेस का वर्गीय स्वार्थ तथा पूंजीपति वर्ग का संरक्षण, फौज और पुलिस के क्रूर अमानवीय अत्याचार तथा दमन, पूंजीपतियों के चन्दों पर चुनाव लडनेवाले खद्दरधारी नेताओं के ओछे हथकण्डों का प्रयोग तथा स्वार्थ-साधना, साम्प्रदायिकता का बढावा, पूंजीपतियों के शोषण के विरूध्द न्यायोचित मांगों को लेकर मजदूर आन्दोलन और हडतालें, कांग्रेस सरकार द्वारा मजदूर नेताओं की गिरफतारियाँ, कर्फ्यु, धारा एक सौ चौबालीस, निहत्थे मजदूरों पर लाठी चार्ज, टीअर गैस का प्रयोग, पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में होनेवाले नारी के शरीर के खरीद-फरोक्त आदि सभी का विस्तृत रूप से और संपूर्ण मानवीय संवेदना के स्तर पर वर्णन 'मशाल' 1951 में लेखक ने किया है।

जपानियों द्वारा पराजित अंग्रेज सरकार द्वारा भारतीय जनता पर क्रूर, अमानवीय अत्याचार सन 1942 के "भारत छोडो" आन्दोलन के अवसर पर अंग्रेजों का डटकर मुकाबला आदि का चित्रण प्रस्तुत उपन्यास में मिलता है। अंग्रेजों के उखडते हुऐ पैरों की तरफ संकेत करते हुऐ अलिम कहता है - "अब हम आजाद हैं, अम्माँ। हमने गुलामी के एक-एक गढ को तोड दिया, अब्बा। जुल्मों के अड्डों,

थानों, चौकियों और कचहरियों को शोलों में खडे-खडे जला कर हमेशा के लिए उनका नामोनिशान मिटा दिया। जेल के खूनी फाटकों को तोड दिया। अंग्रेजी हुकूमत के एक-एक एजेण्ट को कैद लिया। अब हम आजाद हैं।[2] अलिम का यह वक्तव्य उसके आदम्य साहस का परिचय देता है। अलिम को गोली से भून दिया जाता है। उसके माँ-बाप को पेड को बांधकर कोडे लगाये जाते हैं और अलिम के सामने सकीना के साथ एक-एक कर पूरी बटालीयन के गोरे लोग बलात्कार करते हैं अलिम का घर जला दिया जाता है।

मशाल की कथावस्तु कानपुर के उन श्रमिकों की कहानी है जो अपनी बोनस तथा अन्य मांगों के लिए जुझते हैं। पूंजीपतियों और श्रामिकों के बीच के संघर्ष को लेकर गुप्तजीने मशाल की कथावस्तु गठी है जो, ऐतिहासिक तथ्यों के आधारपर सत्य है। उपन्यास का उद्देश्य मजदूर वर्ग के संघर्ष एवं साम्यवादी चेतना को वाणी देना ही है।

उपन्यास का नायक नरेन पहले फौज में था मगर बाद में फौज को छोडकर वह अपने घर जब वापस आता है तो उसकी माँ और भाभी उसे नही मिलती। माँ और भाभी को न पाकर वह अपने मित्र के साथ कानपुर आता है। नरेश को बैठना पसंद नहीं है वह अपने मित्र मिश्वधेनुक से कहता है - "इन्सान को कभी बेकार न बैठना चाहिए। मौजुदा हालत में काम करते, उसे सुधारने के संघर्ष में जुहे रहना ही इन्सान का फर्ज है।"[3] यही कारण है कि नरेन अपने आप को कानपुर के कपडा मिल में व्यस्त कर लेता है। कानपुर पहुँचने के उपरांत नरेन एक सच्चा संघर्षशील मजदूर बन जाता है। उसकी समझ में यह अच्छी तरह आ गया है कि मजदूर पुरी मेहनत करके बेगार क्यों करे? उनकी माँगे, उनकी बातें न्यायपूर्ण हैं। वह कहता है - "मैं यह लडाई अपने खून की अन्वित्र बूंद तक लडूंगा, क्योंकि जीवन मुझे दुनिया की हर चीज से ज्यादा प्यारा है।"[4]

नरेन असल में गुप्तजी के विचारोंका सही रुप में वाहक है लगता है नरेन स्वयं लेखक ही है। गुप्तजीने पात्रों के माध्यम से शोषण के विरुध्द आवाज ऊठाई है। गुप्पजी के सभी पात्र शकूर, मंजुर, मिश्रधेनुक, नरेन, सकीना, मदीना प्रगतिवादी विचारोंके प्रतीक हैं। नरेन के श्रमिकोंके बिच पहुँच जाने से सभी में एक साहस आ जाता है। मजदूरी, न्याय और अन्याय के संदर्भ में शकूर मंजूर से कहता है - "मजदूर क्या हैं, उसके काम की किमत क्या है, उसका संगठन क्या है, उसके संगठन का मकसद क्या है? और जैसे-जैसे ये बातें मेरी समझ में आती गयी, मुझमें एक नयी जिन्दगी, एक नया जोश, एक नयी हिम्मत, एक नया वलवला, एक नयी लडाई, एक नया मकसद करवटें लेने लगा। और मैंने मजदुर होकर अपने को एक पहलेसे बदला हुआ नया इन्सान पाया।"[5] अब मजदूर भी अपने-अपने

हक समझने लगे हैं और वे अपने हक और कर्तव्यों के लिए लडना चाहते हैं। समाजवादी चेतना को मुखरित करता हुआ मंजुर कहता हैं - "दुनिया की हर चीजपर, सरमायदारों ने इन चीजोंपर अपना नाजायज हक जमा रखा हैं हमें बेवकुफ बनाकर। वे हमसे गुलामों की तरह काम कराते हैं और हमारी मिहनत की कमाई पर, गुलर्रे उडाते है।"[6] शकूर सकीना से कहता है कि साहब लोग हजार रुपया महिना पाते है, लेकिन काम दो आने का भी नहीं करते, लेकिन हम मज्दुर लोग आठ-आठ घंटे छाती फाडकर काम करते हैं, लेकिन हम लोगोंको पेटभर खाना भी नहीं मिल पाता।

समाज की विषमता का कारण सकीना अपनी किस्मत बताती है तब शकूर सकीना से कहता है - "नहीं, सकीना, इसमें हमारी किस्मत का दोष नहीं है। दोष इस राज का है, जिसमें मेहनतकश भूखों मरते है, और हुकूमत करनेवाले सरमायेदार और उसकी एजेण्ट बैठे-बैठेमजे उडाते हैं।"[7]

मशाल के सभी पात्र प्रगतिवादी चेतनासे भरपूर हैं। सभी मजदूर संगठन करके अपने हक के लिए लडते हैं, लडना चाहते हैं, वह अब समझ गये है कि जीवन का कोई-न-कोई उद्देश्य होना चाहिए। उद्देश्य रहित जीना बेकार है। उद्देश्य को हासिल करते समय लाख तकलीफें आये तो उसे पार कर अपना ध्येय पूरा करनाही जीवन है चाहे उसके लिए संघर्ष क्यों न करना पडे इसलिए धेनुक कहता है - लाख तकलीफों के होते हुअे भी संघर्ष में जुटे रहने में एक मजा आता है, अपने में ताकत बढती है, दिल और दिमाग मजबुत होता है। क्योंकि वही मशीन बनाता है, मिल खडी करता है, मशीनें चलता है, और सब कुछ पैदा करता है।"[8]

आर्थिक विपन्नता के कारण ही सकीना जैसी नारियों को, जो आर्थिक रुप से परतंत्र हैं उन्हें "डिसूझा साबह" जैसे पुरुषों की वासना का शिकार बनना पडता है। स्वाभिमानी सकीना अपना सतीत्व बचाने के लिए भागती है, तो चकला घर पहुँच जाती है, जहाँ उसे अपनी जीविका के लिए जिस्म का सौदा करना पडता है। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में नारी को शोषण, वेश्यावृत्ति आदि का यथार्थ चित्रण गुप्तजीने मशाल में किया हैं। सामाजिक वैषम्य के प्रति विद्रोह, घृणा की भावना सकीना के मन में है। जब समाचारपत्र बेचनेवाले से सकीना को पता चलता है कि हिटलर की हार और रुस की जीत हुई तब सकीना कहती हैं - " मेरे बहादुर भाईयों की जीत मेरी जीत है। मेरी जिन्दगी की जीत है। अब मुझे एक नयी जिन्दगी मिलेगी। हर मजदूर को एक नयी जिन्दगी मिलेगी।"[9]

नरेन और सकीना एक ही जगह मजदूरी करते हैं। दोनों के खयालात काफी मिलते-जुलते हैं। सकीना को समझाते हुए नरेन कहता है - अरे, भाभी एक जमाना आयेगा, जब अपने देश में भी हम अपनी ताकत से इन डाकुओं को हमेशा-हमेशा के लिए खत्म कर यह लूट का बाजार उठा देंगे। उस वक्त हमारी जिन्दगी अपनी जिन्दगी होगी, हमारी मेहनत हमारी मेहनत होगी,

हमारी मुहब्बत हमारी मुहब्बत होगी, हमारी इज्जत-आबरु हमारी इज्जत-आबरु होगी। उस वक्त वे गोरे फौजी न होंगे, जो तुम जैसे मासूम औरत पर जुल्म तोडें, उस वक्त वह साहब न होगा, जो तुम जैसी बेबस औरत पर बन्दूक लेकर हमला करें, उस वक्त वह गुण्डा न होगा, जो तुम-जैसी भटकी औरत को भगा ले जाय, उस वक्त वह अड्डा न होगा, जहाँ तुम जैसी देवी की अस्मत बेचने के लिए मजबूर किया जाय। भाभी, वह जमाना सच्चे इन्सानी का जमाना होगा, सच्ची जिन्दगी का जमाना होगा, सच्ची मेहनत का जमाना होगा।"[10] यहाँ मजदूरों के उज्वल भविष्यत की कामना स्पष्ट होती है।

गुप्तजी के अनुसार कांग्रेस श्रमिकों की समस्याओं को सुलझा सकने में असमर्थ थी। कांग्रेस के वर्गीय स्वार्थ और साम्प्रदायिकता को संरक्षण देनेवाली स्वार्थपरक राजनीति और पुंजीपतियों के धन्दोंपर लडनेवाले सफेद पोश खद्दर धारी नेताओं की धोखे बजियाँ और निहित स्वार्थों की पूर्ति हेतु किया है। अहिंसा, न्याय तथा सत्य आदि आदर्शोंपर चलनेवाली यह संस्था वोट लेने के लिए किस हद तक गिर सकती इसका प्रमाण चुनाव के समय आजाद हिन्द फौज के सेनानियों को कांग्रेस कमेटी में बुलाकर चुनाव संबंधी दिये जानेवाले निर्देशोंसे लगता है।

मुस्लिम क्षेत्र का कार्य नरेन के हाथों सौंपा जाता है, तो चमचे और छुट भैये नेता पैसा मारने और मजा मारने के लिए नरेन को पटाते हैं। एक युवक कहता है - "जिन्दगीभर तो तकलीफ उठाना तो किस्मत में लिखी ही है। ये आराम के चन्द दिन तो चुनाव के रुपयें से गुलछर्रे उडा ले। सुना है बडे-बडे सेठों ने अबकी चुनाव लडने के लिए रुपये दिये हैं। बडी-बडी रकमें----।"[11] वस्तुतः कांग्रेस एक पूंजीवादी हित साधक संस्था है, जो मजदूर और मालिक, जमीदार और किसान के बीच वर्गसंघर्ष और मालिक, जमींदार और किसान के बीच वर्गसंघर्ष स्थापित कराकर सदैव शोषक वर्ग के स्वार्थों को ही संरक्षण देती आ रही है। आज भी कांग्रेसपर मालिकों का स्वामित्व है, और उनके अधिकारों तथा हितों को बरकरार रखने के लिए उसने समाजवाद तथा धर्मनिरपेक्षता और गरीबी हटाओ आदि के नारे मजदूर और किसानों को गुमराह करने के लिए दिये हैं। लेकिन मजदूर वर्ग अब चेत गया है। उसमें वर्गीय चेतना जाग उठी है। वह शोषक-वर्ग तथा उसकी सरकार (कांग्रेस) के वर्ग-चरित्र को स्पष्ट रुप से समझ चुका है।

कानपुर के कपडा मिलों का मजदूर अन्दोलन इसी वर्ग-चेतना और वर्गीय हितपर आधारित है। कानपुर के कपडा मिल मजदूरोंका संघर्ष सरकार द्वारा नियत आठ घण्टे के समय को लेकर होता है। कपडा मिल-मालिक, मजदूरों आठ घण्टोंसे अतिरिक्त काम लेना चाहते हैं। वर्ग-सचेतन मजदूर, मालिकोंके शोषण का विरोध करते हैं। मिल-मालिक दो पालियों में मजदूरों को

बाटकर एक घण्टें का अंतर रखकर मजदूरों से काम लेते हैं। मजदूर इस बारे में अहिंसात्मक वृत्ति से आवाज उठाते हैं और हडताल करते है। मिल-मालिक तालाबंदी करते हैं, गेट मिटिंग को बर्खास्त करने तथा मजदूरों को तितर-बितर करवाने के लिए ईंट-पत्थर फिकवातें हैं। तो दूसरी ओर मजदूर मंत्री "कराबू ट्रेड डिस्प्युटस" बिल पेश करने का ऐलान कर मिल-मालिकों को कवच पहना देते हैं। मजदूरों के हडताल, सभा तथा प्रचार का हक भी छीन जाता है। बिचौलिया शक्ति के माध्यम से मजदूर संगठन को फोडने का प्रयत्न मालिक करते हैं।

भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी तथ मजदूर सभा के नेता, मजदूर सभाओंमें, अखबारों में मज्दुरों से कांग्रेस सरकार के इस काले बिल के विरुध्द हडताल का आव्हान करते है। जे.के. ग्रूप के इस मजदूर-आन्दोलन को देखकर म्योर मिल तथा अन्य मिलों में मजदूर भी हडताल करते है और हडताल की ज्योति से मिलकर अंदोलन एक "मशाल" बन जाती है और शोषकों के खिलाफ संघर्ष शुरु हो जाता है। इससे नरेन भी प्रभावित हुओ बिना नहीं रहता। वह भी प्यारे के साथ प्रचार कार्य करता है। वर्ग-संघर्ष दिनों-दिन तिव्र हो जाता है। मिल-मालिकों और पुलिसों का दमनचक्र भी तेज हो जाता है। शकूर, मंजुर, धेनुक की गिरफतारियाँ होती है। कामरेड युसुफ, कामरेड कालीशंकर आदि मजूर नेताओं के भी नाम वॅारंट निकलता है। कामरेड यूसुफ सरकार के दमन, मजदूरों की गिरफतारियों, मालिकों के शोषण और लूट का विरोध करते हैं और स्पष्ट रुप में घोषणा करते हैं - "हमपर जुल्म करनेवाले समझ लें कि उनके जुल्म जैसे-जैसे बढते जायेंगे, हमारी ताकत, हमारा एका, और हमारी हिम्मत वैसी ही बढती जायगी। हमें दबा देनेवाली शक्ति संसार में पैदा ही नहीं हुई।"[12] सभी मजदूरों की चेतना और संगठन इतना जबरदस्त था कि आखिर मजदूरों के सामने मिल-मालिक और सरकार को भी झुकना पडता है।

उपन्यास के सभी पात्र काल्पनिक न होकर वास्तविक जीवन से संबन्ध रखनेवाले हैं, जीवन्त हैं। कालीशंकर शुक्ला, मौलाना युसूफ, शिववर्मा जैसे पात्र आज भी जीवित है और भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के सक्रिय कार्यकर्ता हैं। लेखक ने स्वयं कानपुर के जुझारु मजदूरों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर संघर्ष किया है और उसकी मशाल उठायी है। नरेन, धेनुक, शकूर, मंजुर, सकीना, मदीना आदि अन्य पात्र भी खूलकर सामने आये है।

"मशाल" मे मुख्यतः श्रमिक वर्ग के संघर्ष का चित्रण प्रस्तुत करते हुओ साम्यवादी चेतना का अभिव्यक्ति, प्रदान करने का प्रयत्न लेखक के द्वारा किया गया है। कहीं-कहीं पर श्रमिकों की सभाओं और हडतालों आदि को लेकर किय गये कोरे प्रचारात्मक वर्णन बडे ही एकरस हो गये है। इस उपन्यास में प्रगतिवादी सिध्दांतों को केवल बौध्दिक स्तरपर ही उपन्यासकार ग्रहण कर सका है।"[13]

"लेखक का स्पष्ट मत है कि मजदुरों और किसानों का शोषण करने के लिए पूंजीवाद, साम्राज्यवाद तथा फासिस्ट एकजूट हो जाते है। साम्राज्यवाद और फासिस्टों तथा साम्राज्यवादियों और पूंजीपतियों की लडाई वर्गीय स्वार्थो की लडाई है। मजदूर-किसान का शोषण तो इन तीनों ही व्यवस्था में होगा इसलिए विश्व के मजदूरों को भी एकजूट होकर अपने वर्गीय स्वार्थों को ध्यान में रखकर अपने वर्गशत्रु (शोषकवर्ग) से हर समय संघर्ष करते रहना चाहिए।"[14]

"मशाल अपनी संपूर्ण रचना परिधी में समाजवादी दृष्टिसे खरा उतरता है। इस उपन्यास की भाषा आम भाषा है, जिसमें रंच मात्र भी क्लिष्टता का समावेश नहीं है। प्रस्तुत उपन्यास में कला को न ढूँढकर यदी युगनी वर्ग-संघर्ष और वर्ग-चेतना को खोजा जाय तो लेखक के साथ अधिक न्याय होगा।"[15]

"भैरवप्रसाद गुप्त के "मशाल" नामक उपन्यास का विषय और उसकी अभिव्यक्ति भी वर्ग-चेतना से उद्भुत है इसमें घटनाओं तथा पात्रों का चयन श्रमिक वर्ग के जीवन से किया गया है। रचनाकार ने शोषित वर्ग की बढती हुअी शक्ति की पहचान को स्पष्ट करने और वर्गसंघर्ष को व्याख्याईत करने का प्रयास किया है। उद्देश्यपुर्ति की दृष्टिसे इनकी यह रचना अत्याधिक सफल रही है।"[16]

निष्कर्ष :

"मशाल" गुप्तजी का एक महत्वपूर्ण उपन्यास है। उपन्यासका नरेन अन्य कोई न होकर, स्वयं गुप्तजी ही है। उपन्यास का मूल उद्देश्य मजदूर वर्ग के संघर्ष एवं साम्यवादी चेतना को स्वर देना है। उपन्यास के सभी पात्र प्रगतिवादी विचारोंसे प्रेरित हैं। उपन्यास में नरेन का विकास धीरे-धीरे होता जाता है और उसमें वह विद्रोही प्रवृत्ति का बन जाता है। आर्य समाजी चाचा से धर्म के प्रश्नपर असहमती तथा विरोध दर्शाकर वह घर से भागता है और आजाद हिन्द फौज में भरती होकर द्वितीय विश्व युध्द के लिए लडता है। ततपश्च्यात गाँव लौटने के बाद कान्पुर के मिल में नौकरी करता है। लेखक का मजदूर जीवन से निकटतम संबंध रहा है इसलिए शकूर, मंजुर, मदीना, धेनुक जैसे श्रमिक पात्रों का निर्माण यथार्थवादी धरातल पर किया है। संपूर्ण भारत में सत्य की मशाल जलाना ही इस उपन्यास का प्रमुख लक्ष रहा है।

यहाँ साम्राज्यवाद और पूंजीवाद के विरुध्द क्रान्ति की भावना की मशाल को प्रज्वलित किया गया है। पूंजीपतियों एवं उद्योगपतियों को बेतहाशा छूट और संरक्षण मिलने के कारण उनके अधिकारों में वृध्दि हुअी शोषण चक्र गतिशील हुआ इसको भी यहाँ स्पष्ट करने का प्रयत्न भैरवप्रसादजीने किया है। यहाँ मिल-मालिकों की आत्मकेंद्रियता, उपयोगवादिता, अवसरवादिता, हथकण्डे आदि का चित्रण भी देखने को मिलता है। ये लोग लाभपर दृष्टि केंद्रित करके व्यवसायमें जुड जाते हैं और

मजदूरोंका अविरत शोषण करते हैं। वे मज्दुरों की आर्थिक दुर्बलता, दयनियता का फायदा उठाते हैं। मजदूर संगठन को असफल बनाने के लिए रिश्वतें देना, सिध्दांतों की हत्या करना, बिचौलिया शक्ति, सरकार तथा गुण्डों को अपना पक्षघर बनाना, मजदुरोंपर रोब गालिब करना, मजदूरों का शोषण करके संचित पूंजी को अपनी संतान के लिए सुरक्षित रखना, मजदूरों में संगठन शक्ति का निर्माण करके उनमें चेतना भरनेवाले कम्युनिस्टोंकी नफरत करना, मजदूरों के नेतृत्व को खरिदना आदि मिल-मालिकोंकी कओ प्रवृत्तियोंके दर्शन भी लेखकने प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम से हमें कराए हैं। यहाँ आत्मकेंद्रित, स्वार्थपरायण, मुनाफाखोर, उत्पादन साधनों का भोगी, पापकर्मी, विलासी, शोषक, मजदूर एकता में दरारें पैदा करनेवाला मिल-मालिक प्रस्तुत करके लेखकने मजदूर-मालिक में संघर्ष दिखाने का यथार्थ प्रयत्न किया है।

इसके साथ-साथ चुनावी-नीति में आबध्द राजनीतिपर भी प्रस्तुत उपन्यासमें कटुव्यंग किया है। सन साठ के बाद विश्वभर नाथ उपाध्याय के "पक्षघर", सतीश जमाली के "प्रतिबध्द", मधुकर सिहं के 'सबसे बडा छल' आशिष सिन्हा के 'समय बीतता हुआ' आदि उपन्यासों में कलकारखानों के मालिक और मजदूरों का संघर्ष "मशाल" के संघर्ष के भांति ही दिखाया है। लगता है भैरवजीका "मशाल" ऐसे उपन्यासोंकी प्रारंभिक कडी होगी।

सन 1970 के बाद लिखे गये हिन्दी उपन्यासों में पूंजीपति मिल-मालिकों और कल-कारखानों के सर्वहारा मजदूरों में संघर्ष का चित्रण विस्तार से देखने को मिलता है। इसका कारण हमें यह लगता है कि सन 1970 के आसपासही भारत में पुजीवाद के कटु फल अधिक देखने को मिलते हैं। हिन्दी उपन्यासों में पूंजीवादी प्रवृत्तिपर अधिक चिंतन किया गया है। वास्तव में ऐसे वर्णन में आज मार्क्सवाद के दर्शन कम मात्रा में देखने को मिलते हैं इसका कारण आज राजनीति का समाज पर और व्यक्ति के जीवनपर जो संकुल परिणाम हो रहा है उसका चित्रण की ओर आज के उपन्यास लेखकों का अधिक ध्यान रहा है।

गंगामैया - 1953 :

भैरवप्रसाद गुप्तजी का 'गंगामैया' 1953 में प्रकाशित एक महत्वपूर्ण प्रगतिवादी उपन्यास है। इसमें स्वतंत्रता के बाद से लेकर सन 1951 तक की राजनीतिक एवं सामाजिक व्यवस्था की संक्रमण कालीन स्थिति को चित्रांकित किया गया है। स्वातंत्रोत्तर कालखंड में गामांचलों में जमीदारों द्वारा किसानोंका अधिकतम शोषण हुआ करता था। मध्य एवं निम्न जातियों के लोगों को किश्त पर भूमि हो जाती थी, इतनाही नहीं, जमीदार किसानों से मनमाने ढंग से रुपये भी हडप करते थें।

जमींदार लगान का हिस्सा सरकार को देकर राजाश्रय भी प्राप्त करने की धून में लगे थे। इन सभी स्थितियों के कारण जमींदार-किसानों में तनाव बढ़ता रहता था। मार्क्सवादी चेतना के फलस्वरूप किसान संगठनों की स्थापना होने लगी थी और किसानों में वर्ग-चेतना उभरती जा रही थी।

"गंगामैया" का प्रधान पात्र मटरू पूरे विश्वास के साथ जमींदारी शोषण का डटकर विरोध करता है। वह मार्क्सवादी एवं प्रगतिवादी चेतना से संपन्न एवं जागरूक किसान है। वह पददलित एवं अभावग्रस्त किसानों के प्रति संवेदनशील बनकर जमींदारों के अत्याचारों के विरूध्द सामुहिक रूप से लडता रहता है।

किसान-जमींदार संघर्ष के सिवा गुप्तजी ने प्रस्तुत उपन्यास में एक "विधवा-विवाह" जैसे महत्वपूर्ण सामाजिक प्रश्न को भी वाणी देने का काम किया है। इसके साथ-साथ समाज जीवन के विकासरूपी जड में लगी भ्रष्टाचार जैसी धून को भी उकेरकर फेंक देने का प्रयास भैरवजी ने किया है।

बलिया जिले के "जवार" कस्बे का चित्र लेखक ने यहाँ अंकित किया है। भारतीय समाज व्यवस्था में मध्यवर्ग की हिन्दू-विधवा की स्थिति अत्यंत दयनीय रहती है। भारत के गाँव अपने पारस्पारिक आदर्शों एवं धार्मिक मूल्यों के गौरवपूर्ण स्थल रहे हैं। स्वातंत्र्योत्तर युग के ग्रामजीवन में विधवा नारियाँ भी परंपराओं के बंधनों को तोड नयी चेतना से अक्रांत है। "गंगामैया" में मध्यवर्ग के हिन्दू परिवार की विधवा की अवस्था और किसानों तथा जमींदारों के पारस्पारिक संघर्ष का निरूपण प्रगतिवादी दृष्टिकोण से करते हुअे उपन्यासकार मटरूसिंह पहलवान जैसे निर्भिक, साहसी, उदार, हक और न्याय के लिए मर मिटनेवाले व्यक्ति के नेतृत्व हाथ में संघर्ष की बागडोर सौंपता है। "प्रासंगिक रूप में अज्ञानग्रस्त गाँवों के पारस्परिक वैमनस्य बिरादरीवालों की अडंगेबाजी, दो पीढ़ियों का संघर्ष, दरोगा, पुलिस और चौकीदार आदि के हथकण्डों और रिश्वतखोरी तथा निम्नवर्गीय नैतिक नियम की सहज स्वाभाविकता एवं उच्च-वर्गीय नीति-नियमों के परिचालित मध्यमवर्गीय रीतिरिवाजों के खोकलेपन का स्वरूप भली-भाँति "गंगामैया" में चित्रित हो पाया है।"[17]

मटरू, गोपी, मानिक, गोपी की विधवा भाभी आदि का चित्रण तो उपन्यास में आया है मगर सबसे अधिक सशक्त पात्र मटरू है जो सामन्ती मूल्यों से टकरानेवाले नवीन मूल्यों का प्रतीक है। मटरू गंगा की कछार भूमि, जिसपर खेती नहीं होती थी अपनी झोपडी बनाकर रहता है। गंगा के प्रति उसके मन में अपार भक्ति एवं श्रध्दा है। आर्थिक समस्या को दूर करने के लिए मटरू गंगा के दीयर की उस क्वारी मिट्टी पर अथक परिरम करके फसल का उत्पादन प्रारंभ करता है। इसके पहले इस जमीन का कोई उपयोग न होता था केवल जमींदार लोग सरकण्डे बेचकर अपनी आय का साधन बनाये हुअे थे। मटरू को खेती करते देख अन्य किसान भी प्रभावित होकर जमींदार के बहकावे में आकर

उनकी लगान और सलामी देकर अपने-अपने नाम खेती के लिए उस जमीन का बन्दोबस्त करवाने लगते हैं। प्रगतिवादी चेतना से सम्पन्न किसान मटरू उन श्रमजीवी किसानों को संगठित करके इस बन्दोबस्त का विरोध करने को कहता हैं - "तुम लोग अपनी रकम वापस माँग लो। साफ कह दो कि हमें जमीन नहीं लेनी। यहीं होगा कि एक फसल नहीं बो पाओगें, यदि एक बार जमीदारों को तुमने चस्का लगा दिया तो तुम्हीं नहीं तुम्हारे बाल-बच्चे भी हमेशा के लिए शिकंजे में फस जायेंगे। तुम मेरा कहा मानो और मेरा पूरा-पूरा साथ दो।"[18] मटरू किसानों को समझाता है अगर एक बार उनका कहा मानोगे तो - "उनकी लोभ की जीभ सुरसा की तरह बढती जाएगी और एक दिन सबको निगल जाएगी। गंगामैया पर कोई उनका आबाई हक नहीं है। उसके पानी की ही तरह उसकी धरती पर भी हम सब का बराबर का हक है।"[19]

मटरू जंगल की शेर की तरह दीयर में रहता हैं। वह "गंगामैया" को अपने जान से भी प्यारा मानता है। मटरू एक सीदा-सादा इन्सान है गाढे की लुंगी ओर कुरता पहनता है। वह किसानों को समझाता है और जैसे समझाया वैसे ही करना सिखाता है। "जवार" में मटरू की धाक जमी थी किसी भी जमीदार की यह हिम्मत न थी कि उसे सीधे तौर पर छोड सके। जवार में उसका दबाव था उधर से गुजरनेवाला कोई भी उसे बिना सलाम किये न जा सकता। इस हालत में जमीदार का बुलावा सुनकर मटरू अकड गया। वह अपने विचारों को स्पष्ट करते हुअे कहता है कि मटरू किसी जमींदार का कोई आसामी नहीं है, जिसे जरज हो, वही उससे आकर मिले। जमींदार ने एक चलते पुर्जे करिंदे को पढा-लिखाकर मटरू के पास भेजा था मगर मटरू जमींदारों की बातों में आकर अपना संगठन तोडना नहीं चाहता। वह करिंदे को स्पष्ट लब्जों में कहता है - "मटरू पहलवान हराम का नहीं खाता। गंगामैया के सिवा उसने किसी के सामने कभी हाथ नहीं फैलाया।"[20]

मटरू का निर्णय जमींदारों को अच्छा नहीं लगता वह मटरू को किसी तरह अपना पक्षधर बनाना चाहते हैं और यही कारण है कि वे मटरू को डकैत के अपराध में फसांकर रपट, मुकदमा, गर-गवाही आदि सभी झूठा तैयार किया जाता है और उसे हवालात पहुँचाया जाता है।

मटरू एक इमानदार आदमी है। वह प्रगतिवाद से प्रभावित होकर किसानों में जागृति करना चाहता है। मगर यही चेतना मटरू के जेल का कारण बनती है। मटरू को तीन साल की सजा हो जाती है और उसे बनारस के जेल में भेज दिया जाता है।

मटरू जब बनारस के जेल में आता है तब उसकी मुलाकात उपन्यास का पात्र गोपी के साथ हो जाती है। गोपी को जोखू के आदमियों से झगडा, मार-पीट करते समय पकडा गया था। गोपी को पाँच साल की जेल हो जाती है। गोपी और मटरू के समान स्वभाव, समान दुःख, समान जीवन के

कारण वे दोनों एक-दूसरे के गहरे दोस्त बन जाते हैं। गोपी और मटरू दोनों अपनी-अपनी कहानी एक-दूसरे को बताते हैं। मटरू गोपी से पूछता है - "गंगामैया की छाती पर मेंड खिंचना असंभव है, क्योंकि गंगामैया की धारा हर साल सबकुछ बराबर कर देती है। कोई निशान वहाँ कायम नहीं रह सकता। मैया के जमीन छोडने पर जो जितना चाहे, जोते-बोये। जमीन की वहाँ कभी कोई कमी न होगी, जोतनेवालों की कमी भले ही हो जाए। वहाँ सब का बराबर अधिकार रहे।"[21]

गोपी से परिचय हो जाने के बाद मटरू को पता चलता है कि गोपी की एक जवान विधवा भाभी है। "गंगामैया" उपन्यास में लेखक ने गोपी की विधवा भाभी की कारूण्यपूर्ण स्थितियों का अंकन किया है तथा उसका समाधान विधवा विवाह के माध्यम से कराया है। हिन्दू समाज में विधवा का जीवन व्यर्थ माना जाता है। उसका जिंदा चित्र लेखक ने प्रस्तुत किया है - "विधवा जीवन एक ठुँठ की तरह होता है जिस पर कभी हरियाली नहीं आने की, कभी फल-फूल नहीं लगने के - व्यर्थ, बिल्कुल व्यर्थ - धरती पर व्यर्थ भार। हाँ, ठूँठ का बस एक ही उपयोग होता है उसे काट लावन में जला दिया जाता है। ऐसी विधवा का उपयोग भी शायद लावन की तरह ही है जिन्दगीभर जलते रहे, जलकर गृहस्थी की सेवा करना, जिस सेवा के फल का भोग दूसरे करें और खुद राख होकर रह जाये।"[22] गुप्तजी ने विधवा का बडा कारूणिक चित्रण किया है। पुर्नविवाह की सुविधा हिन्दू समाज में धर्म के विरूध्द मानी जाती है उसे अमल में लाने को हमारा संस्कारित मन झीझगता है।

गोपी की विधवा भाभी का चित्रण लेखक ने इस प्रकारसे किया है - "न रूप, न रंग, न वह जवानी, न देह। अब तो जैसे पहले की भाभी एक चलती-फिरती छाया रह गयी थी। दुबली-पतली, सुखी देह, बेबस पीला चेहरा, उदास, आँसूओं में सदा तैरती सी आँखें, मुरझाये-सिले से होंठ, रोएँ-रोएँ से जैसे करूणा टपक रही हो, एक जिन्दगी की जैसी मुर्दा तस्वीर हो, जैसे एक मुर्दा जिन्दा होकर चल फिर रहा हो।"[23]

भारतीय समाज में जवान विधवाओं की स्थिति खासकर ठिक नहीं है। समाज उन्हें कुछ भी करने का अधिकार नहीं देता। सेवा करते-करते भाभी थक जाती है। प्रारंभ में वह अपने सास-ससुर की सेवा जी लगाकर करती थी मगर बाद में वह चिढ-चिढी सी बन जाती है। एक दिन भाभी ने हलवाहे की आँखों में नंगी करूणा देखी उसने भाभी से कहा - मालकिन आप की देह देखकर मुझे बडा दुख होता है। भाभी आपकी उम्र ही क्या है? इसी उम्र से इस तरह आप की जिन्दगी कैसे कटेगी? आपको देखकर मुझे बहुत दुख होता है, ऐसा कहकर बिलरा रो पडा यहाँ बिलरा की प्रगतिवादी दृष्टि नजर आती है। आज भाभी जैसे अनेक विधवाओं को पराश्रित होकर रहना पडता है। यहाँ भाभी का भाग्यवाद उभर कर आया हुआ लक्षित होता है। सामंती संस्कारों के कारण ही गोपी

भाभी अपने वैधव्य का कारण अपना भाग्य बताती है। वह कहती है - "क्या करें बिलरा, भाग्य के आगे किसका बस चलता है? विधाता ने सेंदुर मिटा दिया, करम फोड दिया, तो अब उसी तरह रो-धोकर के तो जिन्दगी काटनी है।"[24]

हमारा भारतीय समाज विधवा विवाह को मान्यता नहीं देता मगर वही अगर किसी पुरूष की पत्नी मर जाती तो उसके यहाँ मेहमानों का तांता लगता है। गोपी की पत्नी के मृत्यु के उपरांत गोपी के घर में भी यही होता है जिसके कारण उसकी भाभी स्त्री-पुरूष के इस अन्तर को देखकर तिलमिला उठती है। मटरू से यह बात जानकर कि जेल में गोपी को अपनी भाभी की बहुत चिन्ता रहती हैं तो उसे ऐसा लगता है, मानो उसके प्राण मधुरतम संगीत के अमृत में नहा उठे हों उसका ध्यान गोपी की विधरता की ओर चला जाता है। यद्यपि वह जानती है कि यह असम्भव है लेकिन गोपी की याद मन से नहीं निकाल पाती। गुप्तजी ने यहाँ भाभी के मानसिक द्वंद्व को सही ढंग से चित्रित किया है और असहाय विधवा भाभी के कारूण्य को उभरकर रख दिया है। जिससे पाठकों के मन में भाभी के प्रति सहानुभूति का निर्माण होता है।

गुप्तजी प्रगतिवादी विचारधारा के लेखक हैं। उन्होंने बिलरा के माध्यम से ऊँची जाति के दंभ को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है - "नीची कही जानेवाली जाती में मानवीय संवेदना हैं। उसकी कोई भी नारी अहिलया नहीं होती है। किसी को पहाड जैसी जिन्दगी नहीं ढोनी पडती। विधवा होते ही वह दूसरे के साथ बैठ जाती है। पर सामन्ती सतीत्व का बीडा उठाने वाले कुलीन नेक नारी का सदैव के लिए जीवन तबाह करा देते हैं।"[25]

गोपी के घर का हलवाहा, बिलरा भाभी की अवस्था पर सच्ची मानवीय सहानुभूति प्रकट करते हुअे कहता है - "यह कैसे रिवाज है मालकिन, आपकी बिरादरी का? इस ममले में तो हमारी बिरादरी अच्छी है, जो कोई बेवा अपनी जिन्दगी खराब करने को मजबूर नहीं - आप ऊँची बिरादरी में क्यों पैदा हुई, आपकी जिन्दगी खराब हो गयी - क्या कहूँ मालकिन मन में उठता है कि छोटे मालिक से अगर आपका ब्याह हो जाता" - यह बात सुनकर ऊँची बिरादरी का अहंकार भभक पडा और भाभी फुत्कार पडी - "बिलरा फिर कभी यह बात जबान पर न लाना।"[26] भाभी के भाग जाने पर बिलरा के मन में ऊँची जातिवालों के प्रति बडी खीज और आक्रोश दिखायी पडता है। जब गोपी के विवाह में अडंगा लगानेवाले बिरादरी के लोग अपमानित होकर चले जाते हैं तो बिलरा को बहुत खुशी होती है, यह खुशी उसकी जीत का प्रतीक है। जो उच्च वर्ग के रीति-रिवाजों पर निम्न वर्ग के रीति-रिवाजों की विजय का परिचायक है।

गोपी परिवर्तित युग का युवक है, जो माँ-बाप के विवाह के आग्रह को दीर्घकाल से

टालता आ रहा है। घर में विधवा भाभी उसकी दृष्टि में यातनापूर्ण जीवन बिता रही है। अतः उसे अपना विवाह करना अच्छा नहीं लगता, वह अपनी समस्या मटरू के सामने रखता है। मटरू क्रांतिकारी विचारों का वाहक है इसलिए वह गोपी को सलाह देता है - "तू उसे अपना ले, बडा पुण्य होगा भैया। कसाई के हाथ से एक गऊ और मिस्कार के हाथ से एक चिरई बचाने में जो पुण्य मिलता है, वही तुझे मिलेगा। बहादुर ऐसे मौके पर पीठ नहीं फेरते।"[27] गोपी मटरू के विचारों से अधिक प्रभावित हो जाता है और अपने माँ-बाप से इस विषय में बात-चीत करना चाहता है मगर मटरू गोपी से पहले भाभी की सलाह लेने का विचार करता है और कहता है - "माई बाबू के चक्कर में यदि पडा तो यह नहीं होगा। रीति-रिवाज और संस्कार को बूढे जान के पीछे रखते हैं।"[28] यहाँ दो पिढियों में परंपरागत मूल्यों को लेकर संघर्ष दिखाई देता है। मटरू का कहना है कि जवान को हिम्मतवाला होना चाहिए, हिम्मत के होने से वह सब कुछ कर सकता है। गोपी भाभी के विचार जानने के लिए उध्दत होता है तब भाभी हृदय के भावों को दबाकर भाग्य की बात कहने लगती है कि ऐसा कभी नहीं हुआ। मेरे भाग्य में यही था। इस भाग्य के कथन पर गोपी भाभी से कहता है - "भाग्य-वाग्य मैं नहीं जानता, जो अभीतक नहीं हुआ हैं वह आगे भी न हो यह मैं नहीं मानता।" गोपी का यह साहस मटरू के कारण और मटरू के ही कारण एक दिन वह अपने माँ-बाप से इस बात को कहता है तो गोपी की बातें सुनकर माँ-बाप दंग रह जाते हैं और खानदान की इज्जत-आबरू का बखान करते हैं। गोपी माँ-बाप के इन विचारों को प्रताडता है और कहता है - "एक चली आयी खोकली नीति, समाज के थोथे रीति-रिवाज, सडी-गली एक रूढे, कुल की झूठी मर्यादा के दम्भी पुजारी, माँ-बाप आज अपने खूनी जबडे में एक फूल सी सुकुमार, गाय सी निरीह, रोगी सी दुर्बल, निहत्थी सी, अपनी रक्षा करने में बेबस, कैदी सी गुलाम, सुबह के आखिरी तारे-सी अकेली युवती को दबाकर चबा डालना चाहते है।"[29] यहाँ लेखक के प्रगतिवादी विचार प्रस्तुत हुअे हैं।

गोपी भाभी को कुअे में जान देने से बचाकर अपने मित्र मटरू के यहाँ छोड आता है और फिर मटरूसिंह उसके माँ-बाप के समक्ष शादी का प्रस्ताव लेकर आता है। गोपी उसे स्वीकार कर लेता है और इस प्रकार उसी विधवा भाभी से एक नये रिश्ते के रूप में शादी हो जाती है। "गंगामैया" उपन्यास की विधवा की स्थिति जो सच्ची है लेकिन उसकी कहानी को जिस रूप में गढकर प्रस्तुत किया गया है, वह अवास्तविकताओं का समुच्चय सा बन गयी है। आदर्शों को, परम्पराओं को बुरी तरह से लडनेवाला गोपी उन्हीं के नाग-पाश नें जकडता चला जाता है। अपने विवाह में उसके द्वारा निभायी गयी रीति-नीतियाँ इसका उदाहरण है। इस प्रकार गोपी की प्रगतिवादीता ओढी हुई मानसिकता का प्रतीक बनकर रह गयी है, इस प्रकार "गंगामैया" विधवा समस्या और उसके वैयक्तिक समाधान (विधवा विवाह)

की करूणाभरी कहानी है।"[30]

उपन्यास का नायक मटरू एक तो किसानों को संगठित करके उनके प्रश्न भी छुडाता है उन्हें अपने हकों के लिए लडना सिखाता है। मटरू के जेल जाने के बाद भी किसानों की संगठन शक्ति में कोओी खंडितावस्था का निर्माण नहीं होता है बल्कि यह संगठन शक्ति पहले से अधिक दृढ बनती है।

डॉ. ज्ञान अस्थाना के मतानुसार - "जमींदार और किसान के संघर्ष को उचित और स्वस्थ दिशा देने के लिए समाज की प्राचीन रूढियों में सुधार करने के लिए मटरू जैसे साहसी और निर्भिक व्यक्ति की आवश्यकता है।"[31] डॉ. इंद्रनाथ मदान के मतानुसार - "भैरवप्रसाद गुप्त ने नागार्जुन की तरह किसान की लाश में रूह फूंकने का काम किया। "गंगामैया" भी इस नारी चेतना का प्रतीक है जिसका धीरे-धीरे देहाती जीवन में संचार होने लगा है। इसके लिए सहकारी तथा समुहिक खेती की योजना का समावेश समाजवादी दृष्टिकोण से अपेक्षित है।"[32]

लगता है प्रस्तुत उपन्यास में आधुनिकता की चुनौती को समष्टिचिंतन के धरातल पर स्वीकारा गया है। प्रस्तुत उपन्यास भैरवजी के सामाजिक चिंतन से युक्त है।

"आज के उपन्यास का विकास दो दिशाओं में होता है। आधुनिकता की चुनौती को दो विभिन्न धरातलों पर स्वीकारा है या आत्मसात किया गया है। "गोदान", "बलचनमा", "गंगामैया", "मैला आंचल", "बूंद और समुद्र", "कब तक पूकारूँ", "झूठा-सच" आदि उपन्यास आधुनिकता की चुनौती को प्राय: सामाजिक स्तर पर स्वीकारते है और समष्टिसत्य की दृष्टि से पुरानी मान्यताओं पर प्रश्नचिन्ह लगाते है।"[33]

"गंगामैया" में ग्रामीण जीवन की कथा अवश्य है परंतु उसका कथानक भिन्न भाव-भूमि पर आधारित है। पात्र भी आंचलिक गुणों से रहीत है। दियर के वातावरण में आंचलिकता उत्पन्न करके क्षमता नहीं हैं। हाँ, वातावरण के निर्माण में वे अवश्य सफल है। सारे उपन्यास पर पडा हुआ भावना का मोटा अवरण भिन्न उद्‌देश्य की ओर ही संकेत करता है।"[34]

"गोदान" के बाद "गंगामैया" हिन्दी का पहला उपन्यास है जिसमें जनक्रान्ति का बिजारोपण हुआ है। आजादी के बाद होरी का विकास मटरू के रूप में हुआ है, जो सामाजिक मर्यादा के दबाव में न रहकर अपनी अस्मिता को बनाये रखने के लिए अनेक चुनौतियों के स्वीकारने और संघर्ष के लिए कटिबध्द रहता है।"[35]

"गंगामैया" में किसानों की रीति-नीति एवं जीवन संघर्षों का चित्रण है। इस उपन्यास में पूर्वी उत्तर प्रदेश के "बलिया" अंचल गांव सजीव हो उठा है।"[36]

"गंगामैया" के भाभी की कथा, विधवा जीवन की करूण कथा है, किन्तु मटरू उसका विवाह गोपी से कराकर आशा एवं नवमानवता का संदेश दिलाता है।"[37]

निष्कर्ष :-

"गंगामैया" में भैरवजी ने सन 1948 से 1951 तक भारत में होनेवाली सामाजिक-राजनीतिक उलथ-पुलथ, समन्ती व्यवस्था का पतन, पूंजीवादी-व्यवस्था का उदय, पारंपरित सनातनी सामंती नैतिकता, धार्मिक विश्वास तथा अंधरूढियाँ, अभिजात्य वर्ग की थोथी मान्यता, जातीय अहम, पुरूषप्रधान समाज की अधिकारिक वृध्दि, नारी की विवशता, पातिव्रत धर्म और किसान संगठन, सामुहिक संघर्ष, झूठे मुकदमें, रिश्वत के बल पर मिलनेवाला पूंजीवादी न्याय, पुलिस तथा सरकारी अमले की कारगुजारी आदि का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत उपन्यास में मिलता है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जमींदारों की तीव्र गति से चलनेवाली शोषण की प्रवृत्ति, जमींदारों द्वारा किसानों को भूमि से बेदखल करना, राजनीतिक जागृति के फलस्वरूप किसान संगठनों में वर्गीय-चेतना का निर्माण होना, चेतना प्रवृत्ति के कारण जमींदार-किसान संघर्ष का निर्माण होना आदि बातें भी यहाँ लक्षित होती हैं। मटरू द्वारा विधुर गोपीचन्द का विवाह उसकी विधवा भाभी के साथ कराकर विधवा-समस्या का प्रगतिवादी दृष्टि से व्यावहारिक समाधान तलाशने का प्रयत्न करना, मटरू द्वारा सामंती मूल्यों से टकराकर नवीन मूल्यों की प्रतिष्ठापना करना आदि बातें भी यहाँ देखने को मिलती हैं।

प्रस्तुत उपन्यास घटनाप्रधान उपन्यास है। इसकी पृष्ठभूमि सन 1938-39 किसान-आंदोलन की है। इसमें मानवीय स्तर की पर्तों को खोलने का प्रयत्न किया गया है। उपन्यास की कथावस्तु प्रवाहमयी है। इसके संवाद बडे ओजस्वी हैं। उपन्यास की मूल कथा विधवा जीवन की विवशता, घूटन तथा शोषण की कथा है। मटरू तथा दीयर के किसानों की कथा गौण लगती है। इस उपन्यास में भैरवजी ने प्रेमचंदीय परंपरा का पूर्ण निर्वाह किया है। लगता है "गंगामैया" निश्चित ही "गोदान" की विकसित कडी है। उपन्यास का पात्र मटरू शारीरिक और मानसिक दृष्टि से सशक्त लगता है। वह दृढ और स्थिर विचारों का है। वह जमींदारों एवं उनके सहाय्यक पण्डे पुरोहितों को अपना दुश्मन मानता है। वह हर स्तर पर अपने इन शत्रूओं का डटकर मुंकाबला करता हुआ नजर आता है। वह राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक और सामाजिक स्तर पर संघर्ष करता है। इन स्तरों पर उसकी लडाई सफल लक्षित होती है।

पूरे उपन्यास में ग्रामांचलिक रीति का ही चित्रण मिलता है। लेखक ने समाजवादी यथार्थ का निरूपण करने के उद्देश्य से ही प्रस्तुत उपन्यास की रचना की है। समाजवादी शक्तियों की अन्त में विजय दिखाई हैं।

सती मैया का चौरा : 1959 :-

"सती मैया का चौरा" भैरवप्रसाद गुप्तजी का एक बृहत उपन्यास है जिसमें पराधीन युग से लेकर 1951 तक की भारतीय सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक इतिहास की पृष्ठभूमि को दृष्टि में रखकर प्रगतिवादी दृष्टि से उसकी व्याख्या की गयी है। जमींदारों के अत्याचार, उसके विरूध्द किसानों का संघर्ष, पूंजीवादी व्यवस्था का विकास और उसकी असंगतियाँ, पण्डे पुरोहितों के थोथे आडम्बर, सरकारी अफसरों द्वारा ली जानेवाली घूस, शिक्षा संस्थाओं में होनेवाले भ्रष्टाचार आदि का समाजवादी दृष्टि से उपन्यास में चित्रण किया गया है। इस उपन्यास में लगभग चालीस वर्ष के भारतीय इतिहास की पृष्ठभूमि को आधार बनाते हुये ग्राम्य जीवन को गतिशील एवं द्वंद्वात्मक रूप में चित्रित किया गया है। संक्षेप में पाँच पीढियों के ग्राम्य जीवन के उत्थान-पतन और परिवर्तन को "सती मैया का चौरा" में निरूपित किया है।

उपन्यास का नायक मन्ने की पाँचवी पीढी में उसके गाँव के आसपास अस्सी मील तक रेल या मोटर का नाम न था और उस छोटे से गाँव में खेती बाडी के अतिरिक्त देशी चीनी के, "तीस-तीस कारखानें चलते थे।.... कारखानों की बडी-बडी भट्टियों से धुवाँ उठकर यहाँ के आसमान में छाता, तो लंकाशायर का मंजर पेश होता। सैकडों मजदूर कारखानों में काम करते।"[38]

उपन्यास का नायक मन्ने के माध्यम से पूरे उपन्यास की कथा प्रवाहित होती है। मन्ने की कथा के साथ-साथ एक अंर्तकथा भी है जो गाँव के तीन पीढियों से होनेवाले किसानों और जमीदारों के संघर्ष को स्पष्ट करती है। जमींदार सुगंधराय के जुल्म और अन्याय के विरूध्द मन्ने से चार पीढी पूर्व गाँव के समस्त वर्ग, सम्प्रदाय, जातियाँ परस्पर संघर्ष करते हैं। उसमें सात लोग मारे जाते हैं जिसमें "चार हिन्दु और तीन मुसलमान" हैं। उन सबको एक साथ दफनाया जाता है, जिनके मजारों पर हिन्दू लोग पूजा करते हैं और मुसलमान लोग फतिहा पढते हैं। नारायण भगत जो गाँव का सबसे बडा महाजन है वह इस काम में पानी की तरह पैसा बहाकर सहायता करता है और गुलाम हैदर जान की बाजी लगाकर जमींदार के अन्याय के विरूध्द गाँव के सेनापति की भाँति लडते-लडते सुगंधराय का बंदी बनता है। उसे अपनी जान खतरे में डालकर गाँव की एक ग्वालन मनबसियाँ मुक्त कराती है। सुगंधराय किसानों से लाठी और जूतों के बल पर दुगना लगान वसूल करता है। वह कहता है - "आज से लगान की दर डयोढी की जा रही है - अगर किसी-न-किसी तरह उज्र किया तो उसका सिर तोड दिया जायगा।"[40]

गाँव के समस्त वर्ग, सम्प्रदाय, जातियाँ परस्पर मिलकर इस जमींदार के अत्याचार के विरूध्द संघर्ष करती हैं। संपूर्ण किसान संगठित होकर संघर्ष करते हैं, जिससे सुगंधराय पराजित हो जाता है। सुगंधराय जवार गाँव को अपनी लडकी को दहेज में दे देता है। परिणामस्वरूप यह गाँव कई बार

जमींदारों में खरीदा-बेचा जाता है।

गाँव का मुस्लिम नेता गुलाम हैदर एक बार फिर गाँववालों को सचेत करता है और अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने को एकत्रित करता है और अपने काजी से कहता है - "यह गाँव हमारा है, इसे बेचने या खरीदने का हक किसी को नहीं देंगे।"[41] गुलाम हैदर के कहने के अनुसार सारे किसान एकत्रित होकर जमींदार से मुकाबला करते हैं। जमींदार के लठैत चारों ओर से घेरकर जवानों से पीटते हैं इस संघर्ष में गुलाम हैदर को अभिमन्यु की तरह एकाकी घेरकर मारा जाता है। जमींदार की जित हो जाने के कारण जमींदार अपने शोषण का पहिया तेजी से घुमाता है आगे चलकर गुलाम हैदर का बेटा लुत्फेहक फिर संगठन करता है और फिर संघर्ष होने लगता है। इस संघर्ष में किसानों की विजय होती है। डॉ. कुवरपाल सिंह का कहना है -"वर्ग-संघर्ष भावावेश नहीं है। यह संघर्ष बहुत लम्बा होता है। इसमें हार-जीत साथ-साथ रहती है। इसका अन्त तब तक नहीं हो सकता जब तक किसान मजदूरों की सरकार नहीं बनती। किसानों ने पीढ़ी-दर-पीढ़ी अनवरत संघर्ष किया पर उनकी दशा में सुधार नहीं हुआ।"[42] किसानों के अरमान थे कि आजादी के बाद कांग्रेस का राज आयेगा और उन्हें अपने परिश्रम का फल मिलेगा, लेकिन वह जहाँ के तहाँ ही रह गये। मन्ने कहता है - "आजादी के बाद जो उम्मीदें वे बाँधे हुये थे, उनमें क्या एक भी पूरी हुई है?"[43] लेखक ने बताया है कि हमारा स्वाधीन भारत का मजदूर और किसान विकासात्मकता की आज तक केवल प्रतिक्षा ही करता आया है। आज कितने ही सरकारें आयी और गयी न किसानों और मजदूरों की स्थिति में बदलाव आया न आयेगा।

"सती मैया का चौरा" साम्प्रदायिक संघर्ष का प्रतीक है। साम्प्रदायिक संघर्ष का मूल कारण धर्म है साम्प्रदायिकता का जहर देश का विभाजन करके ही शान्त नहीं रहा, वरन् उसने स्वाधीनता के बाद के वर्षों में भी विभिन्न समूहों के बीच अलगाव और विघटन का ऐसा पर्दा खड़ा किया कि राष्ट्रीय एकता केवल नारा मात्र बनकर रह गयी। समस्त गाँव में मन्ने के दादा असगर अली का परिवार तरकी कर ऊपर उठता है। असगरअली का एक भाई है सिराजुद्दीन। असगर अली मानवतावादी हैं तो सिराजुद्दीन कट्टर सम्प्रदायवादी, चतुर और बुध्दिमान मुसलमान जो ऐयाश और शराबी हैं। मुसलमानों को यह नुस्खा पिलाया जाता है कि, "मुसलमानों की कौम हुक्मदां कौम है, गाँव पर उनकी अमलदारी हैं, हिन्दू उनकी रिआया है और उनके साथ रियाया का बर्ताव करना चाहिए।"[44] इस उपन्यास को दूर करते-करते फरिश्ता असगर अली इस संसार से उठ जाता है। देवी भगत, मुंशी तथा अन्य सभीलोगों को हार्दिक सदमा पहुँचता है। इसी दर्दनाक कहानी को गाँव का हिन्दू और मुसलमान

तरह तरह से सुनाकर आज दर्द पैदा नहीं करता किन्तु, "सिर्फ गुस्सा, नफरत, दुश्मनी और बदले का जज्बा पैदा करता है, उसके खुन में जहर घोलता है।"[45] हिन्दू मुस्लिम वैमनस्य का मूल कारण अर्थ है, वर्ग विशेष का निहित स्वार्थ है, धर्म या सम्प्रदाय नहीं।

सामप्रदायिकता के दंगे को मिटाने को हर पार्टी प्रयास करती है। स्वाधीनता के बाद वर्षों में भी विभिन्न समूहों के बीच अलगाव और विघटन का एक ऐसा पर्दा खडा किया गया कि केवल राष्ट्रीय एकता मात्र नारा बनकर रह गयी। इस सम्बन्ध में मन्ने कहता है - "कांग्रेस सरकार चीख-चीख कर राष्ट्र निर्माण में भाग लेने के लिए आगे बढकर कार्य करने के लिए लोगों को पुकार रही है और ये कांग्रेसी राष्ट्र निर्माण के हर काम से अडंगा लगाते हैं।"[46] साम्प्रदायिक संघर्ष के बारे में मुन्नी की धारणा है कि - "असल में यह लडाई ऊपर के तबकों की है और यह हमारे देश के सामन्तवाद की देन है। इसका इतिहास बहुत पुराना है। लेकिन इसके रूप में कोई कभी परिवर्तन नहीं आया। पहले वह हिन्दू-मुसलमान राजाओं की लडाई बनी। इन अडाईयों से केवल हिन्दू या मुसलमान राजाओं को सामन्तों और पूंजीपतियों को ही लाभ हुआ। आम जनता चाहे हिन्दू हो या मुसलमान हमेशा ही पिसती रही क्यों कि सामन्त धर्म के नाम पर अपना मुहरा बनाते रहे, पहले युध्दभूमि में और बाद में दंगों में।"[47] साम्प्रदायिकता की इस लडाई से सारा कुछ गिने-चुने उच्च वर्ग के लोगों को ही होता है और निम्नवर्ग का साम्प्रदायिकता के नाम पर शोषण किया जाता है। साम्प्रदायिकता के कारण धर्म का पवित्र स्वरूप विकृत हो गया है, "ये मजहब, ये धर्म, जिनके प्रवर्तक संसार के सर्वश्रेष्ठ मनुष्य थे, जिनका उद्देश्य मानवता को ऊँचा उठाना था - आज उनकी आड में क्या-क्या अनाचार हो रहा हैं, कैसे-कैसे अत्याचार जोडे जा रहें हैं, किस तरह एक दूसरे के दिल में दूसरे को शत्रु बनाया जा रहा है। एक दूसरे को लडाया जा रहा है।"[48] साम्प्रदायिकता का इस प्रकार का उदाहरण भीष्म सहानीजी के "तमस" में भी देखने को मिलता है। वैसे ही आज स्वाधीनता के पैंतालीस वर्षों के बाद भी "राममंदिर और बाबरी मस्जिद" के नाम पर मरनेवालों की संख्या कुछ कम नहीं हैं। मुन्नी इस भ्रष्टाचार से क्षुब्ध होरक वर्ग-चेतना पैदा करना चाहता है ताकि "वर्ग-संघर्ष" द्वारा जनता मुक्ति की लडाई लड सके। मुन्नी कहता है - "साम्प्रदायिकता का इलाज केवल वर्ग-चेतना है, उपदेश नहीं, सुधार नहीं, धर्मों का समन्वय नहीं।"[49] इस प्रकार जनता में वर्ग-चेतना जागृत हो जाने पर उन्हें धर्म के नाम पर कोई सामन्त या पूंजीपति भडका नहीं सकेगा। वर्ग-चेतना धर्मों को हमेशा के लिए गिरा देगी। ऐसा मुन्नी और मन्ने दोनों का विश्वास है। मुन्नी के मतानुसार - "भारत में इन्सानों की अपार शक्ति अभी तक सोयी पडी है और उसे जगाने के लिए रूसी और नेताओं की तरह आदमियों की जरूरत है।"[50] आज साम्प्रदायिकता हमारी एक दुर्बलता बन गयी है।

"सती मैया का चौरा" में गाँव के एक प्राइमरी स्कूल के प्रश्न को लेकर ग्राम सभापति, इन्स्पेक्टर, अध्यापक आदि सभी साम्प्रदायिकता के वशीभूत होकर इस धार्मिक झगडे को राजनीतिक झगडा बना लेते हैं। उपन्यास में गुप्तजी ने मन्ने और मुन्नी को जो मुसलमान तथा हिन्दू हैं दो अभिन्न मित्रों के रूप में चित्रित करके उनके माध्यम से हिन्दू-मुस्लिम एकता के आदर्श को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है।

मन्ने और मुन्नी, मुन्नी के पिता के विरोध पर भी एक ही दोनों में सेब और मिठाई खाते हैं तथा पानी पीते हैं लेकिन मन्ने के स्कूल में प्रथम श्रेणी में आने पर कैलाश के पिता इसे सहन नहीं कर पाते और कैलाश को प्रथम तथा मन्ने को तृतीय श्रेणी में उत्तीर्ण करवा लेते हैं।

मिल में केन-इन्स्पेक्टर की जगह भी मन्ने को इसलिए नहीं मिलती की वह मुसलमान है और मिल-मालिक हिन्दू। मन्ने अपने पूर्वजों के वैमनस्य को भूलकर व्यक्तिगत रूप से सभी प्रकार की साम्प्रदायिक संकिर्णताओं से ऊपर उठ जाता है, वह कहता है - "वह जमाना और था, वे लोग और थे, हम उनकी राह पर नहीं चल सकते।"[51]

हिन्दूओं के गाँव में रहकर भी मन्ने गाँव की प्रगति के लिए बहुत व्याकुल तथा प्रयत्नशील रहता है। लेकिन उसके प्रयत्नों को विफल करने के लिए हिन्दूओं की ओर से ही अधिक बखेडे खडे किये जाते हैं। स्कूल और सती मैया का चौरा को लेकर जो बखेडा खडा होता है उसका मूल कारण चौरे के निकट की चार दीवारी पर रहमान का अधिकार होने के वजह से कांग्रेसी नेता अवधेश हिन्दू-मुसलमान के नाम पर फूट डालकर अगले चुनाव के लिए अपना क्षेत्र तैयार करना चाहता था। सबकी मिली-जुली मेहनत से गाँव में स्कूल की स्थापना का उद्देश्य यज्ञ के समान पवित्र था और सारी जनता उसकी पवित्रता में विश्वास भो करती थी। हिरा भक्त कहता है - "मन्ने बाबू और मुन्नी ने जो जग रोपा है तो पूरे गांव का फरज है कि सब लोगन मिलके इस जग को पूरा करें, जिससे जो बन पडे, उठा न रखे।"[52]

वास्तव में गुप्तजी ने यहाँ बताना चाहा है अवधेश जैसे तथाकथित बडे लोग ही समाज में साम्प्रदायिक संघर्षों और वैमनस्यों की नींव डालते हैं। अवधेश गाँववालों को भडकाता है - "इतने हिन्दुओं के रहते हुअे स्कूल का सेक्रेटरी एक मुसलमान हो, यह कितने शर्म की बात है।"[53] बाद में मन्ने पर गबन का आरोप लगाकर, जाली बील छपाकर उसे स्कूल कार्यकारिणी से बरखास्त कर दिया जाता है लेकिन जनता की चेतना और बुध्दि के कारण अवधेश के सारे षड्यंत्र विफल हो जात हैं। इस हार के बाद, अवधेश अधिक बौखला जाता है। रहमान जिनका घर सती मैया के चौरे के निकट था वह थोडा सा रास्ता छोडकर अपने घर के लिए चार दीवारी बना लेता है। इस बात को लेकर अवधेश

गाँववालों में पुन्हः साम्प्रदायिकता की आग भडकाता है। "ये लोग तो म्लेच्छ है इनका काम ही हम लोगों के देवी-देवताओं के स्थान तोडना है।"[54]

उपन्यास में साम्प्रदायिकता के साथ-साथ राजनीति पर भी गुप्तजी ने प्रकाश डाला है। आज हर पार्टी का कार्य केवल अपना निजी स्वार्थ ही होता है। आज गाँव की राजनीति चाहे कम्युनिस्ट हो, चाहे जनसंघी, कांग्रेसी हो या समाजवादी शहरी नेताओं द्वारा ही नियंत्रित होती है। आर्थिक विकास हेतु मिली धनराशी भी ग्रामीण विकास पर व्यय नहीं की जाती। मन्ने कहता है - "तुम्हें शायद मालूम नहीं कि हमारे गाँव को ही कितने कुओं, खाद के कम्पोस्टों, बीजों, खादों, नयी तरह के हलों, मुर्गे-मुर्गियों और साँडों की सहायता मिली, किन्तु इनसे आम किसानों का कोई लाभ न हुआ सब महाजन और फारम के लोग हडप गये।"[55] स्वार्थी राजनीति पर यहाँ प्रकाश पडता है।

भैरवप्रसाद गुप्त का "सती मैया का चौरा" उपन्यास गाँव की दलगत प्रतिबध्दता को आँकता-आँकता इतनी गहराई में चला गया कि उससे लेखकिय प्रतिबध्दता भी स्पष्ट हो जाती है।"[57]

"इस उपन्यास की मुख्य समस्या साम्प्रदायिक है। लेखक ने यह बताने का प्रयत्न किया है कि प्रारंभ में साम्प्रदायिकता का स्वरूप धार्मिक था, अंग्रेजों के आने के बाद इस समस्या ने राजनीतिक रूप धारण किया।"[58]

"पराधीन युग से लेकर स्वतंत्रता संघर्ष, स्वतंत्रता, जमींदारी, उन्मुलन और शनैः शनैः विकास आरंभ की स्थिति को गुप्तजी ने यहाँ विस्तार से वर्णीत किया है। साम्प्रदायिकता की विकासमान स्थिति का चित्रण यहाँ देखने लायक है। गाँवों में धीरे-धीरे नयी चेतना का जाग्रण होता है। मन्ने इससे अवगत होकर नयी जागृति के सपने देखता है।"[59]

ग्रामीण समाज में उच्च-जाति एवं साधन संपन्न वर्ग के नवयुवक निम्नजाति की महिलाओं से उनके चाहे और अनचाहे भी उनसे अपनी यौन संबंधी अवश्यकताओं की पूर्ति करते हुअे पाये जाते हैं। "पिअरी ग्राम" में नंदराम का बेटा किसन एक चमार कन्या के साथ उसके न चाहने पर भी उससे अपनी यौन संबंधी अवश्यकता पूर्ण करता है।"[60] इस उदाहरण से भैरवजी ने ग्रामीण जीवन में स्थित अनीति पर प्रकाश डाला है।

"सती मैया का चौरा" में लेखक ने जमींदारी टूटने पर जमींदारों की खोखली स्थिति का भी चित्रण किया है। संयुक्त परिवार की टूटने पर जमींदारों की खोखली स्थिति का भी चित्रण किया है। संयुक्त परिवार की टूटनशीलता, बेरोजगारी, रिश्वतखोरी, धोखेबाजी, मुनाफाखोरी आदि को लेखक ने पूंजीवादी व्यवस्था की विसंगतियों के माध्यम से व्यक्त किया है।

"सती मैया का चौरा" घटनाप्रधान उपन्यास लगता है। ये घटनाएँ काल्पनिक न होकर

यथार्थ की दृढ बुनियाद पर खड़ी हैं। इस उपन्यास में लेखक ने जितनी भी समस्याएँ उठाई हैं उनका समाधान भी प्रगतिवादी दृष्टि से किया है। लेखक ने सामंती और पूंजीवादी व्यवस्था में होनेवाले किसान और मजदूरों का शोषण राजनीतिक नेताओं की अवसरवादी नीति, वोट की राजनीति आदि का भी मार्मिक चित्रण किया है। चरित्र-चित्रण की दृष्टि से यह उपन्यास अत्यंतिक सफल है। उपन्यास का पात्र मुन्नी स्वयं भैरवप्रसादजी ही हैं। वे समय-समय पर मन्ने में मार्क्सवादी चेतना भरकर संघर्ष के समय साथ देता है और अंत में प्रेस की नौकरी को त्यागपत्र देकर गाँव के संघर्ष में शामिल होता है। इस उपन्यास का मुन्नी सिध्दांत और व्यवहार दोनों में पूर्णतः मार्क्सवादी लक्षित होता है। इन दो पात्रों के अतिरिक्त अवधेशबाबु त्रिलोकी राय. कैलाश आदि पात्र प्रतिक्रियावादी लगते हैं जो वर्गीय हित के लिए किसान-मजदूरों का शोषण करते हैं और उनके संगठनों को तोडने के लिए निरंतर घात लगाये बैठते हैं। डॉ. भगवतीशरण उपाध्याय के शब्दों में - "सती मैया का चौरा" में गाँवों के महाजन और चतुर बैठकबाज, हिन्दू और मुसलमान, जमींदार और रैयत, कांग्रेसी और कम्युनिस्ट सबों का चित्रण लेखक ने भरपुर आस्था के साथ किया है और यह भी दिखाया है कि किस तरह आज का शासक वर्ग अनैतिक जरियों से सत्य का हनन कर गांव के कर्मठ जीवन में कुंठा उत्पन्न कर रहा है।"[61]

उपन्यास की भाष सरल और प्रभावपूर्ण है लेखक मार्क्सवादी कलाकार होने के कारण भाषा की सादगी पर उन्होंने विशेष ध्यान दिया है ऐसा लक्षित होता है। संवाद पात्रानुकूल हैं। पात्रानुकुल संवाद योजना के कारण पाठक सहजता के साथ उपन्यास में तादात्म्य प्राप्त कर सकता है। इसमें हिन्दी, उर्दू दोनों भाषाओं का प्रयोग हुआ है। लेखक की यह रचना प्रगतिवाद का ऊँचा उदाहरण लगती है।

"सती मैया का चौरा" हिन्दी का पहला उपन्यास है जिसमें लेखक ने सहकारी खेती (को आपरेटिव्ह फार्मिंग) और खेती का उद्योग से जुडने का संकेत दिया है। जवार के किसान वर्षों से आपसी मनमुटाव को भुलाकर गांव के विकास हेतु सहकारी खेती के लिए प्रयास करते है।"[62]

साम्प्रदायिकता से प्रभावित उपन्यासों में "झूठा-सच", "सती मैया का चौरा", "तमस", "आधा गाँव", "जल टूटता हुआ" आदि उपन्यास प्रमुख माने जाते है।

"स्वतंत्रता मिली समझौते के रूप में। बहुत महंगी भी पडी, अखण्डता का स्वप्न खण्ड-खण्ड होकर बिखर गया। फूट और अवसरवादी तत्व को बढावा मिला। आत्मप्रवंचन की प्रवृत्ति बढी। अहिंसा के नारोंतले हिंसा की रणचण्डी नृत्य करती रही। खण्डित भारत पाकर भी हम अखण्डता का राग आलापते रहे। अन्तर्मुखता टूटी रचनाकार एक आक्रोश से भरा हुआ लौट फिर समाज की ओर विभाजन की विभिषिका ने दृष्टि को पुनः वस्तुवादी बना दिया। इलाचंद जोशी का "मुक्ति पथ", अमृत

... LIBRARY
... KOLHAPUR

लाल नागर का "बूंद और सागर" यशपाल का "झूठा सच" भैरवप्रसाद गुप्त का "सती मैया का चौरा" आदि उपन्यासों में विभाजनवादी शक्ति को और साम्प्रदायिकता की धधकती आग को तलाशने का प्रयत्न किया है। "इन उपन्यास लेखकों के बाद रांगेय राघव, नागार्जुन, अमृतराय, राजेंद्र यादव व भीष्म साहनी, राही मासूम रजा आदि उपन्यास लेखकों ने भी इस साम्प्रदायिकता की पीडा के तार से अपने उपन्यास का कलेवर बुना।"[63]

भैरवप्रसादजी के मतानुसार "प्रारंभ में साम्प्रदायिकता का रूप धार्मिक था, अंग्रेजों के आने के बाद इस समस्या ने राजनीतिक रूप धारण कर लिया।"[64]

"सती मैया का चौरा" में लेखक ने साम्प्रदायिकता की समस्या के उठाकर उसका विश्लेषण प्रगतिवादी दृष्टिकोण से करने का प्रयास किया है।"[65]

"सती मैया का चौरा" में ग्रामीण परिवेश के आसपास की किवदंतियों एवं लोककथाओं को आधार बनाकर कथानक का निर्माण हुआ है। "सती मैया का चौरा" हिंदी के आंचलिक एवं प्रादेशिक उपन्यासों में एक अभिनव शैली का परिचायक उपन्यास है। इस उपन्यास में गुप्तजी के वर्णन कौशल एवं कथा कहने की प्रतिभा देखते ही बनती है।"[66]

"सती मैया का चौरा" में लेखक ने इस स्कूल को लेकर गाँव की राजनीतिक, धार्मिक तथा सामाजिक परिस्थितियों को उभारने का प्रयास किया है। मूसलमानों के कैलाश तथा अन्य महाजन हिंदुओं को भडकाते हैं, साम्प्रदायिकता का एक नग्न-नृत्य गाँव में देखने को मिलता है। लेखक ने यही पर कांग्रेसी नेताओं की पोल खोलने का प्रयास किया है।"[67]

"द्वंद्वात्मक भौतिकवादी जागतिक दृष्टिकोण एवं रूस तथा चीन जैसे साम्यवाद की ओर अग्रसर देशों की राज्यव्यवस्था एवं सामाजिक मूल्यों के प्रति इस उपन्यास में अगाध आस्था एवं विश्वास देखने को मिलता है।"[68]

"गुप्तजी ने "सती मैया का चौरा" उपन्यास में यह संकेत दिया है कि धर्म के जिस रूढ रूप का आज के समाज में प्रचलन है, वह अत्यंत दुषित है और उससे तभी मुक्ति पायी जा सकती है जब समाज में सर्वतोमुखी वर्गचेतना जागृत हो।...वर्ग चेतना धर्मों की दीवारों को हमेशा के लिए गिरा देगी।"[69]

"सती मैया का चौरा" में सामंती व्यवस्था का विघटन, किसानों की विद्रोही वृत्ति, मजदूरों में वर्ग-चेतना की लहर आदि का वर्णन कर आंचलिक वातावरण निर्मित करने का प्रयत्न किया गया है, परंतु उपन्यास की भाषा आंचलिक नहीं है।"[70]

निष्कर्ष :-

"सती मैया का चौरा" में जन-जीवन में जागरण, दलीय प्रतिबध्दता, जातियता एवं साम्प्रदायिकता, चुनाव और ग्रामजीवन मूल्य, समाजवादी जनचेतना का उदय, सामाजिक मूल्य और उनका परिवर्तनशील स्वरूप, आदर्श और यथार्थ का द्वंद्व, छोटी-बडी जातियों में पारस्परिक यौन संबंध, पुलिस और गाँव, पंचवार्षिक योजनाए और आर्थिक ग्रामचेतना, सिंचाई के नवीन साधन, कृषि की नव्य वैज्ञानिक श्रम प्रविधियाँ, नये खाद एवं नये बिजों का प्रयोग, गाँवों के विभिन्न वर्गों में व्याप्त बेकारी, सहकारी खेती, ग्रामों में व्याप्त आस्तिकता, साम्प्रदायिकता, तीन पीढियों का जमींदारी इतिवृत्त, ग्राम जीवन में शैक्षणिक चेतना आदि विविध ग्राम जीवन के पहलू यहाँ लक्षित होते है।

प्रस्तुत उपन्यास में चुनाव के लिए प्रयोग में लाये जानेवाले ओछे हरकंडों, स्वार्थी और पदलोलुप कांग्रेसी नेताओं का वर्गीय स्वार्थ, पण्डे-पुरोहितों के थोथे आडंबर, पूंजीवादी अर्थव्यवस्था से उद्‌भूत बेरोजगारी, जनसंगठनों की एकता में दरारें उत्पन्न करने के लिए साम्प्रदायिकता का निर्माण, हिन्दू-मुसलमान दंगे, रिश्वतखोर और पदलोलुप अधिकारियों के क्रिया-कलाप, ग्रामीण-विकास योजनाएँ तथा कांग्रेसी नेताओं और बडे किसानों का अधिपत्य एवं उनकी जाल-साजी आदि बातों का चित्रण प्रगतिवादी दृष्टि से उपन्यास में आया है। इस उपन्यास को पढकर ऐसा लगता है कि आजादी के बाद भी शोषण के विभिन्न आयाम निरंतर बढते जा रहे हैं। चुनावी राजनीति के कारण गाँवों की एकता का भंग होता जा रहा है। राजनीतिक अवसरवादियों के कारण साम्प्रदायिकता को बढावा मिलता जा रहा है। प्रतिक्रियावादी शक्तियों ने मजदूर और किसान संगठन के नेताओं को बदनाम करने का प्रयत्न शुरू कर दिया है। सहकारी खेती और खेती का उद्योग से जोडने का संकेत देनेवाला "सती मैया का चौरा" शायद हिन्दी का पहला उपन्यास लक्षित होता है। उपन्यास में स्त्री-पुरूष के सामाजिक बंधन का वर्णन देखने को मिलता है। पुरूष प्रधान संस्कृति के कारण नारियों पर होनेवाले अन्याय, अत्याचार का खुलकर चित्रण यहाँ गुप्तजी ने किया है। सामंती व्यवस्था में स्थित वेश्यावृत्ति कैलासियों के माध्यम से लेखक ने चित्रित की है।

नौजवान : 1974 :-

"नौजवान" भैरवप्रसाद गुप्तजी का सन 1972 में प्रकाशित प्रगतिवादी उपन्यास है। गुप्तजी ने प्राय: अपने सभी उपन्यासों में प्रगतिवादी भावधारा को चित्रित करने में सफलता पाई है। नौजवान उनका एक ऐसा ही उपन्यास है जो गाँव के एक सामान्य युवक भरत में अंत में चेतना जगा देता है।

उपन्यास में भरत, योगेश भरत के माता-पिता तथा योगेश द्वारा चलाये गये विद्यार्थी

अंदोलन का खुलकर चित्रण गुप्तजी ने केया है। बेकारी, अनुपयोगी शिक्षा प्रणाली, पंचवर्षीय योजना, आर्थिक विकास, विद्यार्थी कल्याण कार्यों की पध्दति, पाठयक्रम तथा शिक्षा, परीक्षा पध्दति के दोष दिखाने का लेखक ने प्रयास किया है।

भरत गाँव का एक सीधा-सादा नौजवान है जो अभीतक गाँव के स्कूल में पढता है। भरत के घर में केवल उसकी माँ और पिताजी हैं। भरत की माँ भरत का खूब खयाल रखती है। पिताजी स्कूल में मास्टर होने के साथ-साथ स्वतंत्रता सेनानी भी हैं। वे अपने असुलों के पक्के हैं। उन्हें उपदेश देने की भी बहुत आदत है। माताजी और पिताजी के विचारों में काफी मतभेद दिखायी देते हैं। भरत गाँव में अपनी पढाई पूरी करके शहर में पढाई के लिए जाता है तब भरत के माता-पिता उसे समझाते हैं। भरत को अपनी माँ को छोडकर शहर में पढाई के लिए जाना अच्छा नहीं लगता। माताजी अनपढ है, गवाँर है मगर समझदार है। भरत के पिता स्कूल में मास्टर होने के कारण समझदार तो हैं मगर हमेशा अपनी पत्नी को गवाँर और नादान समझते हैं वे भरत को भी समझाते हैं - "देखो, बेटा, अपनी माताजी की किसी भी बात पर तुम मत दिया करो। वे अपढ गवाँर और नासमझ स्त्री है। उनके लिए पढाई-लिखाई, देश-सेवा, जनसेवा आदि का कोई महत्व नहीं है। उनके लिए अपना घर ही संसार है और हम दो ही उसके सर्वस्व है।"[71] भरत की माँ एक आदर्श भारतीय नारी है। उसमें सहनशीलता काफी मात्रा में देखने को मिलती है। भरत को शहर में पढाई के लिए जाते समय भरत की मानवतावादी प्रवृत्ति और राष्ट्रप्रेम को जगाने के लिए भरत के पिता उसे समझाते हैं - "बेटा, तुम्हारा यह जीवन केवल अपने लिए, अपने माँ-बाप के लिए ही नहीं है, बल्कि सम्पूर्ण देश के लिए है। सम्पूर्ण देश के लिए ही क्यों, सम्पूर्ण विश्व के लिए है, सम्पूर्ण मानवता के लिए है।"[72] इतना ही नहीं भरत के पिता भरत को गांधी, राम, गौतम के उदाहरण देकर अनकी महानता का परिचय करवाते हैं। भरत को यह मंत्र भी दिया जाता है कि कोई भी महान काम और कठिन कार्य बिना कष्ट उठाये पूरा नहीं होता। मनुष्य कष्टों को झेलकर उसी तरह महान बनता है, जिस तरह आग में तप कर सोना होता है।

भरत की माँ पर भरत का ज्यादा विश्वास है। लेखक ने स्त्री समस्या को सामने लाने के लिए भरत की माँ का चित्रण किया है। माँजी का चित्रण करते लेखक ने लिखा है - "माताजी दिन-रात रोती रहती है, महजनों और ठाकुरों का आटा पिसती, धान कूटती। इन्हीं कामों के लिए उन्हें जो मजदूरी, आनाज और सब्जियाँ मिलती उन्हीं से वे अपना परिवार चलाती।"[73]

भरत के घर की आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी नहीं है यही कारण है कि वह वजीफा पाकर अपनी पढाई करता है। धर्मदेव अमीर है और धर्मदेव के साथ रहकर गुजारा करना भरत के मन

को अच्छा नहीं लगता। वह टयुशन पाने के लिए विद्यार्थी परिषद के लोगों से मिलने के लिए जाता है तब उसकी मुलाकात योगेश से हो जाती है। योगेश की बातें भरत के दिलपर गहरा प्रभाव करती हैं। योगेश युनियन का पदाधिकारी है। योगेश भरत के टयुशन के संदर्भ में उसकी मदद करता है। योगेश भरत से कहता है - किताबें भी तुम्हे मिल जाएंगी, फीस माफ हो ही जाएगी। किसी-न-किसी तरह काम चह ही जायगा, घबराने की कोई बात नहीं है। तकलीफ और संघर्ष से परेशान नहीं होना चाहिए। आदमी को बस धैर्य और साहस नहीं छोडना चाहिए और अपनी कोशिश से कभी बाज न आना चाहिए।"[74] भरत के टयुशन और फसका प्रबंध योगेश के सहारे से हो जाता है साथ ही उसके रहने का और भोजन का प्रबंध भी योगेश कर दता है।

भरत और योगेश का साथ दिन-ब-दिन गाढा बन जाता है। योगेश के साथ रहने के कारण अब भरत में भी चेतना प्रवृत्ति का उदय होने लगता है। योगेश के साथ भरत भी सभाओं में, संगठनों में योगेश का साथ देता है।

समस्त विश्व में आज "युवा मानस" के रुप में एक नयी पीठी का अभ्युदय हो रहा है। असन्तोष की भावना के कारण बस पीठी में अब विद्रोह की भावना व्याप्त हो उठी है। आज युवा पीठी के युवकों में पुरानी पीठी के दकियानुसी विचारों के प्रति असंतोष, सामाजिक मान्यताओं, रुढ परम्पराओं और शिक्षा तथा शिक्षण संस्थाओं में प्रचलित पूराने ढर्रे की शिक्षा पध्दति के प्रति गहन आक्रोश तथा विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों के प्रबन्धकों के तानाशाही ही व्यवहार के प्रति विद्रोह और गुस्सा उपन्यास में व्याप्त है।

आज हमारी शिक्षा व्यवस्था केवल पूंजीपति शिक्षा-व्यवस्था बन चुकी है। निर्धन विद्यार्थियों को चाहकर भी शिक्षा संस्थानों में प्रवेश नहीं दियाजा जाता है। आर्थिक तंगी में भरत जैसे विद्यार्थी की शिक्षा के लिए होने वाली तडपन को गुप्तजीने प्रस्तुत किया है। भरत विश्वविद्यालय तो जाता है मगर पूंजीवादी सरकार और पुलिस से छापामार युध्द करने लगता है। हमारी शिक्षा-व्यवस्थापर व्यंग करते हुवे विद्यार्थियोंने रिपोर्ट की है कि - "विद्यार्थियों की संख्या के मुकाबिले अध्यापकों की संख्या अनुपाततः कम है। परिणामस्वरुप एक विद्यार्थी पर व्यक्तिगत रुप से अध्यापक उतना ध्यान नहीं दे पाता, जितना आवश्यक है और विद्यार्थी उस व्यापक शिक्षा-दीक्षा से वंचित रह जाता है जो उच्चस्तरीय शिक्षा के लिए आवश्यक है।---- विश्वविद्यालयों में अच्छे पुस्तकालय नहीं है --- पुस्तकालय विश्वविद्यालय का मानस है, क्योंकि एक सुव्यवस्थित, अद्यतन पुस्तकालय के बिना शास्त्रीय अध्ययन और खोज असंभव है।"[75]

शिक्षा संस्थान में आज पूंजीवाद आ पहुँचा है। शिक्षा को सही ढंग से देखने के बजाय

आज सिर्फ एक परीक्षा का पाठयक्रम निर्धारित किया जाता है। हमारी पाठयक्रमों की व्यापकतापर ध्यान नहीं दिया जाता। अधिकतर पाठयक्रम प्राप्त पुस्तकों की शिर्षकों से अथवा उसमें थोडा परिवर्तन करके बना लिए जाते हैं और उन्ही पुस्तकों को पढाने की शिफारिश की जाती है। अध्यापक उन्ही पुस्तकों तक अपने को सीमित खरता है और उन्हें आरंभ से अन्त तक अपने भाषणों के माध्यम से विद्यार्थियों को पढाकर ही अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ लेता है।

पाठयक्रमों की तरह ही हमारी परीक्षा पध्दति भी दोषपूर्ण हैं बल्कि यों कहा जाए तो अधिक ठीक होगा कि हमारी दोषपूर्ण परीक्ष-पध्दति हमारे पाठयक्रमों के दोषों को और बढा देती है। हमारे यहाँ परीक्षाएँ वर्ष में एक बार या दो बार ही होती हैं। इन परीक्षाओंके परिणामसे ही हम विद्यार्थियोंकी योग्यता को भाँपते हैं।

विद्यार्थियों के कल्याण के लिए आज विद्यालयों, विश्वविद्यालयों में "विद्यार्थी कल्याण समितियों" का निर्माण तो होता है मगर उनके कल्याण-कार्योंपर विशेष ध्यान नही दिया जाता। विश्वविद्यालयों की स्वायतता की विशेषता में जाने कितनी बातें की जाती हैं, नये-नये विश्वविद्यालयों और कालेजों को खोलने की रोज-रोज मॉंग उठती हैं किन्तु विद्यार्थियों के लए उचित मनोरंजन की कोई व्यवस्था नहीं होती। "राधाकृष्णन आयोग" की शिफारिश के अनुरुप कई विश्वविद्यालयों में "विद्यार्थी कल्याण अधिष्ठाता" के कार्यालयों की स्थापना हुई हैं लेकिन यह कार्यालय छात्रों के लिए सचमुच कुछ नहीं करता। यह केवल छात्रों को रियाती रेल्वे टिकट दिलाने का कार्य करता है।"[76]

योगेश के साथ भरत और अन्य साथी मिलकर सभी मांगों के लिए उपकुलपति के निवासपर संयुक्त मोर्चा निकालते हैं और नारे लगतो हैं - विद्यार्थी एकता। जिन्दाबाद। विद्यार्थी युनियन। जिन्दाबाद। विद्यार्थियों की फीस। वही रहेगी, वही रहेगी। मगर इसी बीच पुलिस विद्यार्थी संगठन तोडने का प्रयास करती हैं। भरत को भी पुलिस की लाठी लगने से वह घायल हो जाता है। घेरा तोडकर पुलिस जुलूसपर लाठियाँ बरसाना शुरु कर देती हैं। योगेश कहता है - "असल में हम लोगों से बहुत बडी गलती हो गयी: आन्दोलन शुरु होने के पहले ही सरकार ऐसी भयंकर क्रूरता से विद्यार्थियों पर हमला करेगी, बसकी कल्पना हम न कर सके। हमने सोचा था कि जलूस शान्तिपूर्ण ढंग से निकल जाएगा। उपकुलपति हमारा मॉंग-पत्र के लेंगे और हमारी मॉंगोपर विचार करने का आश्वासन दे देंगे लेकिन यहाँ तो पहले से सरकारने पूरी तैयारो कर ली थी। हमारी जलूस उपकुलपति के निवास से अभी दूर ही था कि जलुस को पुलिस ने घेर लिया। घेरा तोडकर हम आगे बढे ही थे पुलिस ने पूरे जलूसपर लाठियाँ बरसानी शुरु कर दी। हमने सडक के दोनों ओर गलियों में घूसकर मोर्चेबंदी की और सडक पर लाठियाँ संभाले खडी पुलिस भाग खडी हुई। हमने समझा पुलिस चली गयी लेकिन पुलिस

का तो आगे का कार्यक्रम निश्चित था। वहाँ से हटकर सीधे जुब्ली छात्रावास पर पहुँच गयी और वहाँ हमला बोल दिया।'[77]

पुलिस अत्याचार, शिक्षा व्यवस्थाओंपर विराजमान कुलपतियोंका विद्यार्थी मांगोंपर ध्यान न देना इन सारी बातों से विद्यार्थी संतप्त हो जाते हैं और आंदोलन का स्वरुप और भी तीव्र हो जाता है।

देश के सभी राजनीतिक दल, विशेषकर विपक्षी राजनीतिक दल अपने कार्यों के लिए विद्यार्थियों को अपने दोरों में लाने का प्रयास करते हैं। अपने भावी कार्यकर्ताओं तथा नये नेताओंके लिए वे उनकी ओर देखते हैं। विश्वविद्यालयों में कोई आन्दोलन आरंभ करना और उसमें विद्यार्थियोंको खिंचना राजनीतिक दलों के कार्यक्रमोंका एक विशेष अंग है। इस तरह के आन्दोलन, जिसमें सारा शैक्षिक कार्य ठप्प पड जाता है, पूरे राष्ट्र को क्षति पहुँचती है और यह आन्दोलन न तो विद्यार्थियों को कोई लाभ पहुँचा पाते हैं और न राजनीतिक दलों को।

हमारी शिक्षा पध्दति वस्तुतः आज अनुपयोगी हो गयी है। आज इस शिक्षा पध्दतिसे कोई भी लाभ विद्यार्थियोंको नही होता आज शिक्षाप्रणाली की अनुपयोगितासे बेकारी का प्रमाण खूब बढ गया है। बेकारी के चित्र को स्पष्ट करते हुअे लेखकने स्पष्ट किया है - 'वस्तुतः हमारी इसी दोषपूर्ण वर्तमान शिक्षा पध्दति से ही देश में दिनों-दिन शिक्षित बेकारों की संख्या अधिकाधिक बढती जा रही हैं। लाखों पढे-लिखे युवक रोजगार के लिए मारे-मारे फिर रहे हैं उन्के समक्ष किसी एक निश्चित भविष्य के न होने तथा आजीविका के साधन उपलब्ध न होने के कारण उनमें सरकार के न होने के कारण उनमें सरकार तथा प्रशासन के प्रति निरंतर विद्रोह बढता जा रहा है।'

बेकारी के कारण छात्रों में दिन-प्रतिदिन ज्ञान-विज्ञान के प्रति अरुचि भी बढती जा रही है। उनका वैचारिक परिवेश निरन्तर टूटता जा रहा है। आज इस बात की बहुत ज्यादा जरुरत है कि युवा शक्ति की सही नेतृत्व और उपर्युक्त मार्गदर्शन मिले। वास्तव में यह कहना तो बिल्कुल गलत और बेमानी है कि भारत का युवा-मानस किन्हीं बाहय कारणोंसे अथवा शक्तियोंसे प्रभावित और प्रेरित है। देश का वर्तमान दिशाहीनता की स्थिति और बेकारी की समस्या ही वास्तव में इसके लिए पूर्णतः उत्तरदायी है। अपनी बेकारी के कारण इस प्रकार का आक्रोश पैदा हो जाना स्वाभाविक है उसके लिए वह सरकार और पुलिस से भी, हर समय मुठभेड के लिए तैयार रहता है। 'अब यह सरकार बहुत दिनोंतक नही चल सकती। इसकी पुलिस, सेना और पुलिस का आतंक, लोगों के मन सेहर रहा है। लोग अब जगह-जगह उसे ललकारने लगे हैं। यही उसकी शक्ति के टूटने का चिन्ह है।'[78]

योगेश के साथ भरत के दिल में भी प्रगतिवादी चेतना का निर्माण होता है। गाँव का एक सीधा-साध नौजवान पढाई के लिए आता क्या है और उसमें चेतना का विकस किस तरह पनपता

है इसका चित्रण गुप्तजीने किया है।

पुलिस अत्याचार, पूंजीपतियों का शिक्षा व्यवस्था में हाथ, पूंजीवादी शिक्षा के खिलाफ आन्दोलन दिखानाही लेखक का प्रमुख उद्देश्य रहा है। पुलिस के अत्याचार और अन्याय का उदाहरण हमें धर्मदेव पर किये गये अन्याय से मिलता है। धर्मदेव कहता है - "जुलूस की रात पुलिस ने हमारे छात्रावासपर हमला किया था। मेरे कमरे में दो पुलिसवाले घुस आये थे। मैं हबकाया उनकी ओर देख रहा ही था कि एकने मेरे सिरपर लाठी मार दी थी। मेरा सिर फट गया था। मुझे पुलिस ने क्यों मारा, मेरी समझ में नही आता।"[79] धर्मदेव जैसे विद्यार्थीपर पुलिस का हमला करना केवल अन्याय है।

उपन्यास के अंत में विद्यार्थी आन्दोलन को दबाने के लिए लेखक ने लिखा है कि विश्वविद्यालय अनिश्चित काल के लिए बन्द कर दिये हैं ऐसा रजिस्टार का बयान है योगेश को गोली लगी है वह अस्पताल में पडा है फिर भी योगेश जैसे प्रगतिशील युवक का कहना यही है कि - "देश के नौजवानों ने अपनी जिन्दगी संवारने के लिए जो आन्दोलन छेडा है, उसे यह बर्बर शक्ति से कुचल देंगे, हमारे मनोबल को तोड देंगे, ऐसा सोचना उसकी खामखयाली है। यह लडाई जारी रहेगी और उस समय तक चलती रहेगी जब तक यह पूंजीवादी शिक्षा-व्यवस्था समाप्त नहीं हो जाती।"[80]

पूंजीवादी शक्तियों का विरोध आज हर जगह से हो रहा है। योगेश अस्पताल में नर्स को समझाते हुअे कहता है - "क्या आपका यह खयाल है कि हमारा यह आन्दोलन सिर्फ विश्वविद्यालय और कालेजों के आहतों तक ही सीमित हैं? क्या आपके और इन मरीजों के बेटे-बेटियाँ, भाई-बहन नही हैं? नही सिस्टर, नही, यह लडाई हर जगह लडी जा रही है ----- स्कूल में, कालेजों में, दफतरों में, कारखानों में, कचहरियों में, खेतों में, बाजारों में, सडकों पर ------ यहाँ तक कि आपके अस्पतालों में भी---- पूंजीवाद का जाल कहाँ नही बिछा हैं, सिस्टर--- हमें इस जाल को हर जगह से टूकडे-टूकडे करके जला देना है। जब तक उस जाल हम नहीं जला देंगे, तब तक न आप होंगी, न इन मरीजोंको ठीक दवा मिलेगी, न हमें सही पढाई की सुविधा मिलेगी।"[81]

निष्कर्ष :-

"नौजवान" गुप्तजी का एक प्रगतिवादी उपन्यास है। गुप्तजीने साम्यवादी विचारधारा को चित्रित करते हुअे निम्न-मध्य वर्ग के एक नौजवान के आर्थिक संघर्ष की कहानी प्रस्तुत की है तो उत्तरार्ध में गुप्तजीने शिक्षा, समाज, संघर्ष, छापामार, युध्द आदि विषयों को साम्यवादी विचारों से प्रस्तुत किया हैं। बीच-बीच में मानवतावाद को दिखाकर महात्मा गांधी, लेनिन, राम, गौतम जैसे मानवतावादी नेताओं के उदाहरण दिये हैं, जिसके कारण एक सामान्य युवक भरत में धीरे-धीरे परिवर्तन होता जाता है। गुप्तजीने यहाँ यह स्पष्ट किया है कि पूंजीपतियों की शोषण नीतिसे शिक्षा-व्यवस्था भी छूट नही

पायी है। पूंजीवादी शिक्षा-व्यवस्था पर उन्होंने व्यंग किया है। उनका कथन है - "बीज बोने से फसल उगती है तो खून से क्रान्ति होती है।"

"नौजवान" शिक्षा-व्यवस्था की समस्या को लेकर आरंभ होता है और उसीमें उसका अंत भी होता है। उपन्यास के आरंभ में भरत के पिता ने शिक्षा व्यवस्था का विकृत स्वरुप सामने रखा है। भरत के पिता जो भरत को एक आदर्श युवक बनने को कहते थे मगर हम देखते है कि जो लडका आदर्शवादी युवक बनने जा रहा था वही आगे चलकर हडताल, आन्दोलनमें शामिल हो जाता है और पिताजी द्वारा पढाये गये आदर्शवाद के टूकडे-टूकडे कर देता है।

अध्यापकों द्वारा अपने बच्चों को अधिक अंक देने की प्रवृत्ति, निःशुल्क शिक्षा के नामपर बढता शुल्क, क्रिडा शुल्क, विद्युत शुल्क, वाचनालय शुल्क, भवन निर्माण शुल्क आदि सभी बातें पूंजीवादी शिक्षा-व्यवस्था का नतिजा है। लेखक का कहना है भ्रष्टाचार की जडें आज दूर-दूर तक फैल गयी है। स्वतंत्रता के बाद केवल भ्रष्टाचारही फैला है। "नौजवान" में पूंजीवादी शिक्षा-व्यवस्था को समाप्त करने के लिए संघर्ष चलता रहता है। लेकिन जबतक पूंजीवादी सरकार है, वह पूंजीवादियों के हितों की रक्षा के लिए पूंजीवादी शिक्षा व्यवस्था को दी अपनायेगी। लेखक के मतानुसार इन स्थितियोंमें बदलाव की आवश्यकता है।

"नौजवान" में सन 1942 की घटना को भी प्रासंगिक रुप में चित्रित किया गया है जिससे भरत के माता के आदम्य साहस के दर्शन गुप्तजी ने हमें कराये हैं। इसके अतिरिक्त भरत जहाँ भोजन करने के लिए जाता है वहाँ की माताजी की झलक भी लेखक ने चित्रित की है जिसका बेटा 1942 के आन्दोलन में मारा गया था। माताजी का अत्यंत दयनीय किन्तु अत्याधिक सशक्त चित्रण उपन्यास में किया गया है। योगेश जैसे साहसी युवक नेता के संपर्क में आने के कारण भरत जैसा एक सामान्य नवयुवक भी क्रांन्ति की तरफ कैसे मुडता जाता है यही दिखाना लेखक का यहाँ उद्देश्य है।

आग और आंसू : 1983 :-

"आग और आंसू" उपन्यास के मुख्यतः दो पक्ष है। एक की कथा जमींदार किसान से संबंध रखती है और दुसरी जमींदार के अंतःपूरसे। उपन्यास के दोनों पक्षों की कथा रुढियों ओर परंपराओं में पिसते-पिसते उब गयी है। करावास के बंदी के समान वह स्वतंत्र होने को व्याकुल है।

जिस गाँव की यह कहानी है, वहाँ के जमींदार बडे सरकार कहलाते हैं और उनके पुत्र लल्लन छोटे सरकार।

बडे सरकार, के जीवन का लक्ष है - वैभव और ऐश्वर्य। ग्रामीणों की प्रार्थना पर ध्यान देने को उनके पास समय नही किन्तु बडघन के लिलए किसानों की अवहेलना अवश्य है।

किसान अपनी फरियाद लेकर आते हुअे कहते हैं - 'बडे सरकार, हम यह अरज लेकर आये थे कि सब परती-परास का बंदोबस्त सरकार कर रहे हैं तो आखिर, हमारें जानवरों को खडे होने की जगह कहाँ मिलेगी।'[82] वे किसानों की बिनती भी नहीं सुनना पाहते और वे कह देते हैं - 'तुम लोग फिर कभी मिलना आज फुर्सत नहीं है।'[83]

पूंजीवादी व्यवस्था में पिसते हुअे किसान यह अनुभव कहते हैं कि सामंती समाज में आज के जैसे अंधेर गर्दी नही थी। नगेसर कहता है - 'वे गरीब परवर होते थे। सान-शौकत, ऐस-आराम में पैसा उडो थे, तो कुछ कीरत का काम भी कर जाते थे और अबके है कि परजाके लिए नया कुछ का बनवायेंगे, बाप-दादा जो बनवा गये हैं, उसकी मरम्मत तक नही करते।'[84]

अंग्रेजों के संकेतोंपर चलनेवाले इन जमीदारोंने ग्रामीणोंका बहुत अहित किया। द्वितीय महायुध्द के समय उन्होंने किसानों को खेतों से इस प्रकार बेदखल कर दिया कि वे बेकार होकर भूखे मरने लगे और विवश होकर फौज में भरती हुअे।

बडे सरकार के इलाकेसे कलक्टर एक हजार रंगरुट माँगता है। जमीदार लगान की दर तीगुनी बढाता है। बंदोबस्त की बातों को टालना रहता है, हार में दुकानदार सताये जाते हैं केवल इसी कारण कि सब काम ने मिलने पर पेट भरने के लिए फौज में भरती हो जाए और जमीदार सरकार के भले बने रहे।

जमींदार की चाल है कि लम्बी सलामी लेकर किसानोंसे जमीन छीनकर, दूसरोंके नाम बंदोबस्त कर दे। इस प्रकार बहुतसे किसान बेकारी के कारण फौज में भरती होने को विवश हो जायेंगे।

इस दास्यत्व ने जीवन के पारस्पारिक प्रेम-संबंध मिटा दिये हैं। व्यक्तिगत स्वतंत्रता समाप्त कर दी है। बेंगा पुत्र 'चतुरी' कांग्रेसी है, इसी कारण उसे जमीदार की आज्ञानुसार अपने पूत्रसे संबंध विच्छेद करना पडता है। बेंगा दु:खी होकर कहता है - 'इस गुलामी ने मुझे बाप भी नहीं रहने दिया चतुरी की माई, मैं अपने बेटे का बाप नहो दुश्मन हूँ।'[85] पत्नी बिमार है परंतु सरपर बडे सरकार का आदमी सवार है। ऐसी परिस्थिति में बेंगा का जाना बली के बकरे के समान प्रतीत होता है।

ये रईस अपने धन के मोटे से आवरण में अपनी सारी अश्लिलता ढंक लेते हैं। उनका बडप्पन उनके 'अति यथार्थ' को ढंके रहता है। किन्तु यह भी सत्य है कि यह सब तभी तक है जब तक उनकी ओर, उंगली उडाने का किसीमें साहस नहीं। सुंदरी का हृदय इस बडप्पन और आवरण में छिपी नग्नता के प्रति घृणा से भर जाता है, वह सोचती है - 'हुहं। वे जवानों के साथ चाहे जो कर

लो ---- मैं समझ गई हूँ ----हमारी एक बात और सौघडे पानी। तुम्हारी सब सान इसलिए है कि हम चुप हैं, हम उरते हैं। नहीं तो, नही तो ---- मैं जानती हूँ ---- तुम भी डरते हो, हमारी कए बात और तुम्हारी सारी सान, सारी इज्जत---- कही मुँह छुपाने को भी जगह न मिले --- सब रोष-दाब, गोली-बनुक (बन्दूक) धरी की धरी रह जायगी ---।"[86]

मुंदरी के मन में विद्रोह है परंतु अन्य दासियाँ महाराजीन, जलेसरी, जनकिया, सुगिया, पटेसरी, बदमिया आदि ऐसी भी हैं जो निरंतर दास्यत्व में रहते-रहते अभ्यस्त हो गयी है। उनकी आत्मा मृतप्राय हो चुकी है। भडकीले वस्त्र और आभूषणों के लिए वे अपने नरित्व को, सतीत्व को बेच चुकी है।

किन्तु ल्लल्लन अपने पिता की विलासप्रियता और उनकी बंदियों के दास्यत्व से घृणा करता हैं। वह बदमिया से कहता है - "तू भाग क्यों नही जाती किसके साथ? मैं तुझे कुछ रुपये दूँगा। तु कोशिश करके आजाद हो जा।"[87] बदमिया चकित होती है कि मालिक कैसी बातें कर रहे हैं। ल्लल्लनजी को यह कहने में संकोच नही हाता है कि - "मैने एक जालिम की तरह तुझे जलील किया था। अब मैं तेरी मदद करना चाहता हूँ।"[88]

लल्लन अपनी प्रेयसी शकुंतला की इच्छा पुर्ण करने के लिए कैप्टन बनकर हवेली के जीवन से मुक्ति पाता है। लल्लन का यह विकास उसकी नयी पीठी को चेतना तथा शकुंतला के संघर्ष और, उच्चशिक्षा का प्रभाव स्वरुप है।

लल्लन के प्रगतिशील चरण के द्वारा लेखक ने भविष्य में आनेवाली उस चेतना की ओर संकेत किया है जो अपने पूर्वजों की घृणित परंपराओं को तोडकर, मानव की स्वतंत्रता के लिए प्रयत्नशील है। जहाँ स्त्री-पुरुष की अनुचारी न रहकर शकुंतल के समान शक्तिशाली बनकर पुरुषोंके प्रगति मार्ग में सहाय्यक होगी। लल्लन के जीवन के ये प्रगतिशील चरण ही नवीन मानवताकी सृष्टि करेंगे।

मनुष्य का कलुब ही आत्मा को कलंकित करता है। जिसरात बडे सरकार रानीजी के अनन्य प्रेमी रंजन की हत्या की उसी समय उनके हृदयवर एक ऐसा भारी बोझ पडता है जिससे नीचे दबकर उसकी आत्मा चितकार कर उठती हैं। "इस जिन्दगी में क्या रखा है, आत्मा में क्या धरा हैं माही का लोना, जरासा पानी और गल जाए, पानी का बुलबुला छन में गायब। झुठा है रोष। झूठी है इज्जत। क्या धरा है इसमें। दोन दिन की जिन्दगी और तुफान बदतमीजी।"[89]

रंजन की हत्या उनकी आत्मा को क्षमा न कर सकी। वेशे पडते और अपनी आसूओं से पाप को धूंदला करने का प्रयास करते हैं। आत्मा की इस आकुलता में वे बेंगा से क्षमायाचना करते है। "बेंगा तुम मुझे माफ कर दो।---- आज मैंने सबको माफ कर दिया है, और तुम मुझे माफ कर

दो। तुमने अपनी सारी जिन्दगी मेरी खिदमत में गुजार दी और मैंने तुम्हारे साथ क्या सलूक किया। जुल्म, सिर्फ जुल्म। बेंगा, मैं बहुत शर्मिदा हूँ। मुझे माफ कर दो, बेंगा। '[90]

किन्तु यह चेतना के क्षण एक 'अध्यात्मिक दौरे' के समान होते हैं जो भावुक कवि की कल्पना के समान क्षणिक होते थे। अंततः बडे सरकार को हम नाचरंग में मस्त दिखते हैं।

इस उपन्यास में लेखक गुप्तजी यह बताना चाहते ळे कि प्राचीन परंपराओं और रुढियों में पलले व्यक्ति अपने संस्कारों के कारण जीवन में प्रगतिशीलता के पथगात्री नहीं बन सकते, नयी पीढी में उनसे विद्रोह करने का साहस नहीं किन्तु नयी पीठी सबन्ध-विच्छेद से अपना स्वतंत्र मार्ग बना सकती है।

'स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के छियालिस वर्षों के संघर्ष के दौर से गुजरने के बाद भी आज हम स्वतंत्र नहीं है। शोषक और शोषित वर्ग की खाइयाँ दिन प्रतिदिन गहरी होती जा रही है। शोषक वर्ग आधुनिक सभ्यता का मुखौटा लगाकर गिध्द की भांति व्यक्तिगत स्वार्थ साधने की ताक में सतत प्रयत्नशील है।[91] इसका सबूत हमें भैरवप्रसाद गुप्तजी के आलोच्च उपन्यास में मिल सकता है। आज के युग में नैतिकता, सच्चाई, कर्मठता को किस प्रकार समाप्त किया जा रहा है, इसका चित्रण भैरवजी के आलोच्च उपन्यास में देखने को मिलता है।

निष्कर्ष :-

'आग और आंसू' द्वितीय विश्वयुध्द और आर्थिक संकट के समय साम्राज्यवादी सामंतीय शोषक वर्ग तथा उनके सहायक सहकारी अधिकारियों के शोषण-जाल में गिरफत भारत के जवार कस्बे के शोषित-किसान, व्यापारियों तथा संपूर्ण जन-जीवन को प्रतिबिंबित करता है। सामंती व्यवस्था में जमींदारों तथा महाजनोंद्वारा होनेवाला किसानों का शोषण, व्यापारियों की लूट-खसोट, परती भूमिपर अवैध अधिकार,बलात लगान वसूली, पुलिस तथा जमींदारों के पालतू गुण्डोद्वारा आसामियों के साथ मार-पीट तथा क्रूर अत्याचार, शोषण में जमींदारों के सहाय्यक करिंघ, मुंशी, राजवंश, पुजारी-पुरोहित, गुण्डे और पुलिस-दारोगा, कांस्टेबल, डिप्टी-पुलिस सुपरिन्टेण्डेण्ट तथा कलक्टर की कारगुजारी, बढती लगान की दर, बलात वसुली के विरुध्द किसानों में असंतोष, किसानों में उत्पन्न वर्ग-चेतना तथा वर्गीय स्वार्थ, जमींदारों और पुलिस जुल्मोंके विरुध्द किसानों का सामूहिक वर्ग-संघर्ष, वर्गीय एंव जातीय अन्तर्विरोध, लाल-झण्डे के प्रति श्रध्दा, किसान संगठनों का निर्माण आदि का यथार्थ चित्रण भैरवप्रसाद गुप्तजीने प्रस्तुत उपन्यास में किया है। इतना ही नहीं तो इस उपन्यास में रुढीगत मान्यताओं, धर्माडम्बरों, सामंतीय विलास-वैभव की ऐशगाह, सामंतीय वैभव के नीचे नारी की घुटनमयी छटपटाहट, स्वामी की दासता, वासनासे ग्रस्त लौण्डी जीवन की विवशता, स्वच्छंद प्रेम का दमन, अनमेल विवाह से उत्पन्न मानसिक और शारिरिक विकृत्तियाँ

एवं कुण्ठाएँ, पुरुषद्वारा तथा समाज व्यवस्था द्वारा नारी का दोहरा शोषण, आदि बातों का वर्णन लेखकने प्रगतिवादी भावधारा की यथार्थ पृष्ठभूमिपर किया हुआ लक्षित होता है।

प्रतिक्रियावादी शक्तियों के शोषण तथा उस शोषण के विरुध्द सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक स्तर पर संघर्ष करनेवाले प्रगतिशिल चेतना से संपन्न नये व्यक्तित्वका निर्माण कैसे हो रहा है यह लल्लनके माध्यम से स्पष्ट करना यहाँ लेखक का उद्देश्य नजर आता है।

'आग और आंसू' में टूटती हुअी सामंतीय व्यवस्था में मुंदरी (लौंडी) तथा चतुरी जैसे नये व्यक्तित्व का निर्माण गुलामी की जंजीरों को उतार फेंकने के लिए तत्पर हो रहे है, इसका संकेत लेखक ने दिया है।'[92]

'आग और आंसू' की कथा उन शोषित किसान-मजदूरों की है, जिन्हे जमीदारों द्वारा भूमिसे बेदखल किया गया है। जमींदारी उन्मुलन कानुन पारित होनेपर भी किसान भूमिहीन हो गये और जमीदारी शोषण और तेज हो गया। यहाँ वर्गीय चेतना से संपन्न जवार के किसान संगठित होकर जमीदार, सरकारी अमला और, कांग्रेसी नेताओं से त्रिकोणात्मक संघर्ष करते हैं। गांव में चतुरी, रमेसर, महावीर आदि नयी चेतना से संपन्न युवक विकास कार्य में जुट जाते हैं और पूरे 'जवार' का नक्शा बदल जाता है, यह भी यहाँ स्पष्ट होता है। दूसरी तरफ सदियों से संत्रस्त नारी की स्थिति सामंतीय-व्यवस्थामें और भी बदतर हो गयी है, यह भी यहाँ स्पष्ट होता है। लौण्डी जीवन की तीन पाढियों की दयनीय स्थिति का यथार्थ चित्रण यहाँ भैरवप्रसाद गुप्तजीने किया है।

परिवर्तित स्त्री-पुरुष संबंध लल्लन-शकुंतला के प्रेम संबधोंसे स्पष्ट हुअे है। यहाँ लेखकने ग्राम्य जीवन की यथार्थता को चित्रित करके उसके गतिशीलल स्वरुप को प्रस्तुत किया है। सामंतीय समाज का पतन तथा पूंजीवाद से उत्पन्न सामाजिक-आर्थिक विषमतासे नयी पीढिका संघर्ष, इस संघर्ष में प्राप्त सफलता, नया युग, नयी पीढी, और नयी व्यवस्था का भी संकेत लेखकने इस उपन्यास के माध्यम से दिया है। डॉ. बांदिवडेकरजी के मतानुसार 'भैरवप्रसाद गुप्तजीके ' 'मशाल', 'गंगामैया', 'सती मैयाका चौरा', 'जंजीरें और नया आदमी' (आग और आंसू) नामक उपन्यास प्रगतिवादी कहे जा सकते है।'[93]

निष्कर्ष :-

भैरवप्रसाद गुप्तजी के आलोच्य उपन्यास 'मशाल', 'गंगामैया', 'सती मैया का चौरा', 'नौजवान', 'आग और आंसू' प्रगतिवादी कहे जा सकते हैं। भैरवजी की सन 1951 से सन 1983 तक की औपन्यासिक विकास यात्रा देखने से यह स्पष्ट होता है कि उनके उपन्यासों में विषय-वैविध्य देखने को मिलता है। 'मशाल' में औद्योगिकरण से उत्पन्न वर्ग-संघर्ष पर प्रकाश डाला है, 'गंगामैया', 'सती

मैया का चौरा' आदि उपन्यासों में जमीदार-किसान वर्ग-संघर्ष को प्रस्तुत किया है, 'नौजवान' में पूंजीवादी शिक्षा-व्यवस्था का विरोध करके इस शिक्षा के खिलाफ छात्र आंदोलन खडा कर दिया है इतना ही नहीं बेकारी को बढानेवाली अनुपयोगी शिक्षा व्यवस्था के खिलाफ छात्रों का आक्रोश प्रस्तुत किया गया है। 'आग और आंसू' में सामंती वासना की शिकार लौंडी जीवन की करूण कहानी को वाणी प्रदान करके लौंडी जीवन में पत्नी मुंदरी द्वारा इस व्यवस्था के खिलाफ लडने के लिए चेतना जागृति करने का प्रयत्न किया गया है।

भैरवजी के पात्र उनके विचारों के वाहक लगते हैं वे अपने पात्रों में चेतना भरकर नये मानव का निर्माण करना चाहते है। 'मशाल' का नरेन, 'गंगामैया' का मटरू, गोपी, पूजन, 'सती मैया का चौरा' का मन्ने और मुन्नी, 'नौजवान' का भरत और योगेश, 'आग और आंसू' का लल्लन, चतुरी और मुंदरी ऐसे पात्र लगते हैं जो नये व्यक्तित्व का अच्छा सबूत पाठकों के सामने रख देते हैं। भैरवजी ने अपने आलोच्य उपन्यासों में पिअरी, जवार और कानपुर आदि को केंद्र में रखकर 'पिअरी' और 'जवार' के माध्यम से ग्रामांचलिक स्थिति और गति पर प्रकाश डाला है तो कानपुर को केंद्र में रखकर औद्योगिकरण से उत्पन्न नागरी जीवन की समस्याओं की ओर संकेत किया है। भैरवजी के उपन्यासों का कथा क्षेत्र ग्रामीण और नागरी लगता है। इनके आलोच्य उपन्यासों की कथावस्तु गतिशील और धारावाही महसूस होती है। भैरवजी प्रगतिवादी उपन्यास लेखक होने के नाते उनके उपन्यासों की भाषा सामान्य व्यक्ति को समझने लायक रही है। अर्थात भाषा-प्रयोग की दृष्टि से भी लेखक ने प्रगतिवादी दृष्टिकोण को साकार किया है। प्रेमचंदजी के 'गोदान' की कडी को आगे बढाने का अत्यंतिक समर्थता के साथ भैरवजी ने किया है। उनके उपन्यासों में वर्ग-संघर्ष, नारी शोषण, साम्प्रदायिकता, ग्राम जीवन की स्थिति और गति आदि के गहरे दर्शन होते हैं। उनके उपन्यासों में अनुभूति और संवेदना के यथार्थ दर्शन होते हैं। प्रगतिवाद के विविध आयाम, ग्रामीण जीवन के विविध पहलू पाठकों के सामने रखकर गुप्तजी ने अपने प्रगतिवादी भावधारा को पाठकों के सामने प्रवाहित किया है। उनके उपन्यास मानवीयता से जडे हुअे लगते है। वे भारतीय एकात्मकता के पक्षधर होने के नाते साम्प्रदायिकता को इस देश से भागना चाहते है। स्पष्ट है कि गुप्तजी के इन आलोच्य उपन्यासों में उनकी प्रगतिवादी दृष्टि स्पष्ट उभर रही है।

संक्षेप में भैरवप्रसाद गुप्तजी के आलोच्य पांच उपन्यासों में से 'सती मैया का चौरा', 'गंगामैया' प्रगतिवादी आंचलिक उपन्यास लगते हैं। 'मशाल', 'नौजवान', 'आग और आंसू' प्रगतिशील विचारधारा के प्रतिनिधित्व करते हैं। भैरवजी के उपन्यास 'सती मैया का चौरा' का हिंदी जगत में पर्याप्त आदर हुआ। इसी रचना के कारण ही भैरवजी आंचलिक उपन्यासकारों में गिने जाने लगे।

संदर्भ :-

1. भैरवप्रसाद गुप्त - मशाल की भूमिका, निलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वि.सं. 1957
2. भैरवप्रसाद गुप्त - मशाल, निलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वि.सं. 1957, पृ. 69
3. वही, पृ. 179
4. वही, पृ. 194
5. वही, पृ. 99
6. वही, पृ. 108-109
7. वही, पृ. 122
8. वही, पृ. 181
9. वही, पृ. 140
10. वही, पृ. 230
11. वही, पृ. 167
12. वही, पृ. 172
13. वही, पृ.223
14. डॉ. प्रभासचन्द्र 'मेहता' - प्रगतिवाद और हिन्दी उपन्यास (सन 1936 से 1960 तक) साहित्यसदन, देहरादून; प्र.सं. 1967, पृ. 394
15. डॉ. गोपाल कृष्ण शर्मा - मार्क्सवाद और हिन्दी उपन्यास, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, प्र.सं. 1990, पृ. 138
16. वही, पृ. 143
17. प्रिया अम्बिका - भैरवप्रसाद गुप्त के उपन्यासों में सामाजिक चेतना, संतोष प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1988, पृ. 41
18. डॉ. प्रभासचन्द्र शर्मा 'मेहता' - प्रगतिवाद और हिन्दी उपन्यास, साहित्य सदर, देहरादून, प्र.सं. 1967, पृ. 396
19. भैरवप्रसाद गुप्त - गंगामैया, धारा प्रकाशन, इलाहाबाद, तेरहवां सं.1982, पृ. 32-33
20. वहह, पृ. 29-30
21. वही, पृ. 33
22. वही, पृ. 51
23. वही, पृ. 44
24. वही, पृ. 42

SHIVAJI UNIVERSITY KOLHAPUR

25. भैरवप्रसाद गुप्त - गंगामैया, धारा प्रकाशन, इलाहाबाद, तेरहवां सं. 1982, पृ. 57
26. डॉ. कुवरपाल सिंह - हिन्दी उपन्यास सामाजिक चेतना, पाण्डुलिपि प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1976, पृ. 183
27. भैरवप्रसाद गुप्त - गंगामैया, धारा प्रकाशन, इलाहाबाद, तेरहवां सं. 1982, पृ. 47
28. वही, पृ. 99
29. वही, पृ. 98
30. वही, पृ. 107
31. डॉ. ज्ञानचन्द गुप्ता - स्वातंत्रोत्तर हिन्दी उपन्यास और ग्रामचेतना, अभीनव प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1974, पृ. 127-128
32. डॉ. ज्ञान अस्थाना - हिंदी उपन्यासों में ग्राम समस्याएँ, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, प्र.सं. 1979 पृ. 29
33. डॉ. इन्द्रनाथ मदान - आज का हिन्दी उपन्यास, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1966,पृ. 18
34. वही, पृ. 18
35. डॉ. आदर्श सक्सेना - हिन्दी के आंचलिक उपन्यास और शील्पविधी, सूर्य प्रकाशन मंदिर, बिकानेर, प्र.सं. 1971, पृ. 100
36. डॉ. सुरेंद्र प्रताप यादव - स्वातंत्रोत्तर हिन्दी उपन्यासों में ग्रामीण यथार्थ और समाजवादी चेतना, भावना प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1992, पृ. 200
37. डॉ. इंदिरा जोशी - हिंदी आंचलिक उपन्यास : उद्भव और विकास, देवनागर प्रकाशन, जयपुर, प्र.सं. 1985, पृ. 185
38. डॉ. ह.के. कडवे - हिंदी उपन्यासों में आंचलिकता की प्रवृत्ति, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 1978, पृ. 178
39. भैरवप्रसाद गुप्त - सती मैया का चौरा, निलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र.सं. 1959, पृ. 234
40. वही, पृ. 231
41. वही, पृ. 249
42. डॉ. कुंवरपाल सिंह - हिन्दी उपन्यास सामाजिक चेतना, पांडुलिपि प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1976, पृ. 171
43. भैरवप्रसाद गुप्त - सती मैया का चौरा, निलाभ प्रकाशन,इलाहाबाद, प्र.सं. 1959, पृ.591-592
44. वही, पृ. 262

45. भैरवप्रसाद गुप्त - सती मैया का चौरा, निलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र.सं. 1959, पृ. 268

46. वही, पृ. 624

47. वही, पृ. 593

48. वही, पृ. 50

49. वही, पृ. 665

50. वही, पृ. 601

51. वही, पृ. 533

52. वही, पृ. 616

53. वही, पृ. 616

54. वही, पृ. 632

55. वही, पृ. 704

56. डॉ. ज्ञानचन्द्र गुप्त - स्वातंत्रोत्तर हिन्दी उपन्यास और ग्रामचेतना, अभीनव प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1974, पृ. 64

57. डॉ. विमलशंकर नागर - अनुसंधान के नये सोपान, प्रेरणा प्रकाशन, मुरादाबाद, प्र.सं. 1989,पृ. 6

58. डॉ. ज्ञान अस्थाना - हिन्दी उपन्यासों में ग्राम समस्याएँ, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, प्र.सं. 1979, पृ. 269

59. डॉ. मृत्युंजय उपाध्याय - हिंदी के आंचलिक उपन्यास, चित्रलेखा प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र.सं. 1989, पृ. 51

60. डॉ. विमल शंकर नागर - अनुसंधान के नये सोपान, प्रेरणा प्रकाशन, मुरादाबाद, प्र.सं. 1989,पृ.6

61. डॉ. गोपाल कृष्ण शर्मा - मार्क्सवाद और हिंदी उपन्यास, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, प्र.सं. 1990, पृ. 164

62. वही, पृ. 161

63. संपा. डॉ. वचन देवकुमार - अनुवाद शोध पत्रिका, हिंदी विभाग, रांची विश्वविद्यालय, अंक 3, वर्ष - 1979, पृ. 11

64. डॉ. ज्ञान अस्थाना - हिन्दी उपन्यासों में ग्राम समस्याएँ, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, प्र.सं. 1979, पृ. 269

65. डॉ. चन्द्रकान्त बांदिवडेकर - हिन्दी और मराठीके सामाजिक उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन (1920-1947), कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर, प्र.सं. 1969, पृ. 501

66. डॉ. इंदिरा जोशी - हिंदी आंचलिक उपन्यास : उद्भव और विकास, देवनागरी प्रकाशन, जयपुर, प्र.सं. 1985, पृ. 185-186

67. डॉ. बालकृष्ण गुप्त - हिन्दी उपन्यास : सामाजिक संदर्भ, अभिलाषा प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 1978, पृ. 170

68. वही, पृ. 170

69. डॉ. अरूणा चतुर्वेदी - गांधी विचारधारा और हिन्दी उपन्यास, कल्पकार प्रकाशन, लखनऊ, प्र.सं. 1983, पृ. 214-215

70. डॉ. ह.के. कडवे - हिन्दी उपन्यासों में आंचलिकता की प्रवृत्ति, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 1978, पृ. 179

71. भैरवप्रसाद गुप्त - नौजवान, रचना प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र.सं. 1972, पृ. 36

72. वही, पृ. 36

73. वही, पृ. 20

74. वही, पृ. 67

75. वही, पृ. 108

76. वही, पृ. 109-110

77. वही, पृ. 144

78. वही, पृ. 135-136

79. वही, पृ. 206

80. वही, पृ. 207

81. वही, पृ. 208

82. भैरवप्रसाद गुप्त - आग और आंसू, धारा प्रकाशन,इलाहाबाद, प्र.सं. 1983, पृ. 22

83. वही, पृ. 22

84. वही, पृ. 176

85. वही, पृ. 114-115

86. वही, पृ. 235

87. वही, पृ. 349

88. वही, पृ. 349

89. वही, पृ. 307

90. वही, पृ. 308

91. संपा. डॉ. गोपाल - समीक्षा जुलाई-सितम्बर 1981, वर्ष - 15, अंक 2, पृ. 43

92. डॉ. गोपाल कृष्ण शर्मा - मार्क्सवाद और हिन्दी उपन्यास, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, प्र.सं. 1990, पृ. 155

93. डॉ. चन्द्रकान्त महादेव बांदिवडेकर - हिन्दी और मराठी के उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन (1920-1947) कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर, प्र.सं. 1969, पृ. 500-501

000